योगविद्या

वर्ष 9 अंक 12
दिसम्बर 2020
सदस्यता डाकखर्च – रु100

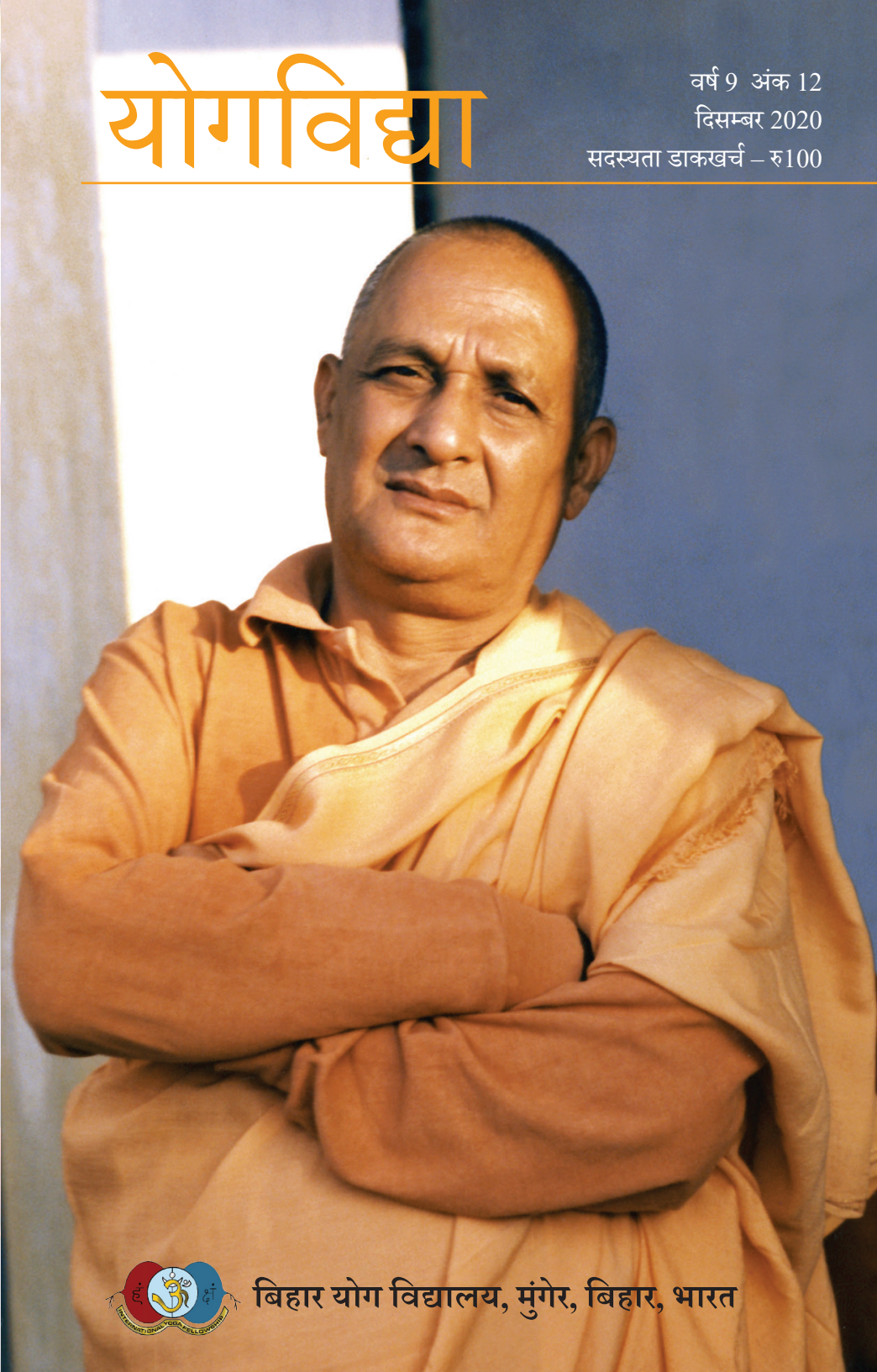

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2020

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

साधना

साधना का लक्ष्य जीवन को उन सीमाओं से मुक्त करना है जिनसे अभी वह घिरा हुआ है। साधना आजीवन चलनेवाली प्रक्रिया है। हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण आगे बढ़ने का अभियान है।

प्राय: लोगों के मन में आध्यात्मिक मार्ग के प्रति उत्सुकता ही रहती है। वे सोचते हैं कि यदि वे कुछ यौगिक अभ्यास करेंगे तो कुछ शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त कर लेंगे। जब ऐसा नहीं होता तो वे धैर्य खो बैठते हैं तथा आध्यात्मिक मार्ग छोड़कर योग एवं योगियों का तिरस्कार करने लगते हैं। मात्र उत्सुकता आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति प्रदान नहीं करेगी। पता लगाइए कि आपके अन्दर सच्ची आध्यात्मिक जिज्ञासा है या केवल चंचल उत्सुकता। सतत् सत्संग, स्वाध्याय, प्रार्थना, जप, तप एवं ध्यान द्वारा अपनी उत्सुकता को मुक्ति की सच्ची पिपासा में रूपान्तरित कीजिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 9 अंक 12 दिसम्बर 2020
(प्रकाशन का 58 वाँ वर्ष)

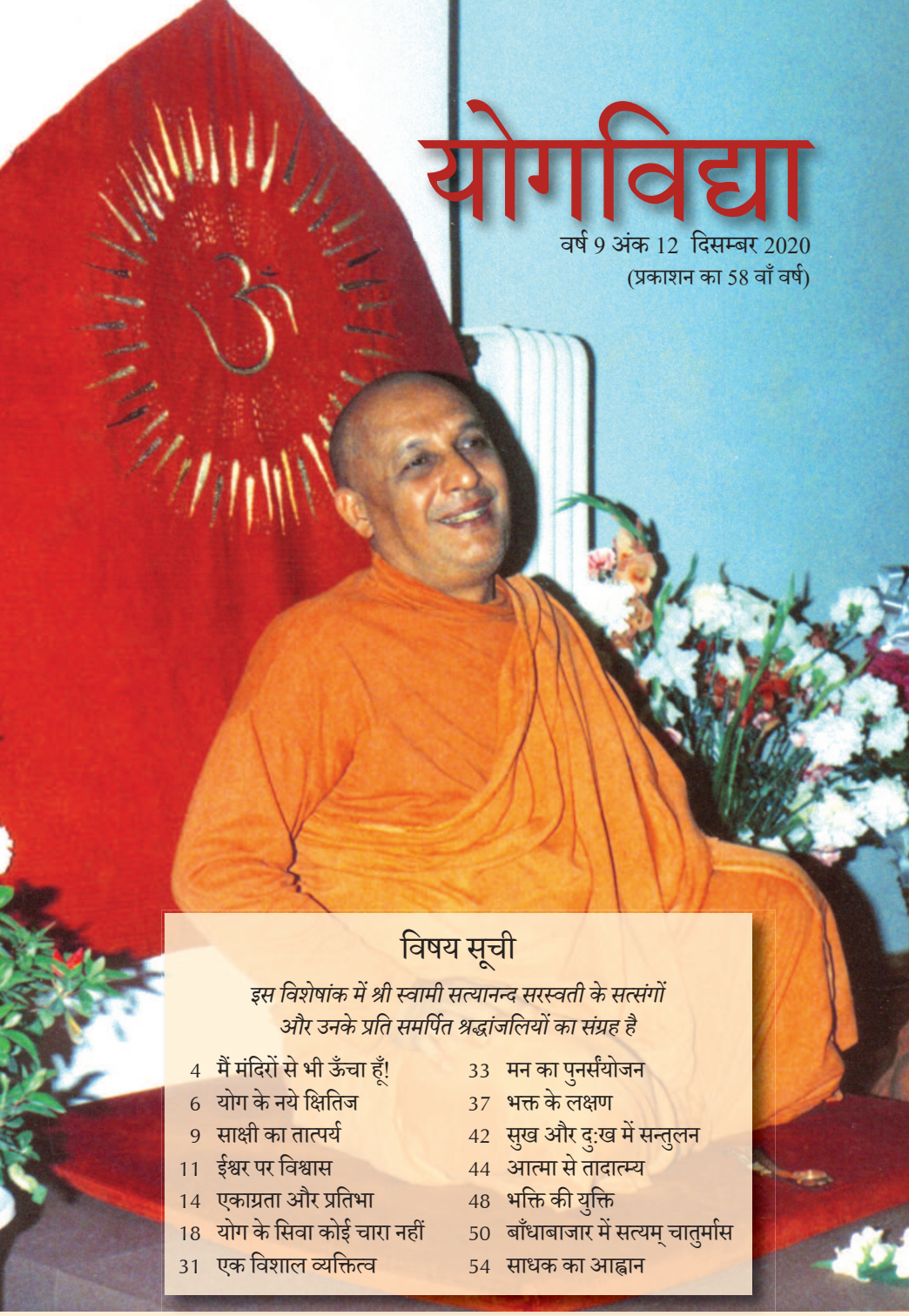

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 मैं मंदिरों से भी ऊँचा हूँ!
6 योग के नये क्षितिज
9 साक्षी का तात्पर्य
11 ईश्वर पर विश्वास
14 एकाग्रता और प्रतिभा
18 योग के सिवा कोई चारा नहीं
31 एक विशाल व्यक्तित्व
33 मन का पुनर्संयोजन
37 भक्त के लक्षण
42 सुख और दु:ख में सन्तुलन
44 आत्मा से तादात्म्य
48 भक्ति की युक्ति
50 बाँधाबाजार में सत्यम् चातुर्मास
54 साधक का आह्वान

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

मैं मंदिरों से भी ऊँचा हूँ!

प्रार्थना करो, किन्तु एकान्त में, शान्ति और आत्म-तल्लीनता में। क्योंकि मैं नित्यमुक्त आत्मा हूँ, जिसे तुम अपने वैभव का लोभ दिखला कर, पुरोहितों से खचित घरों में कदापि नहीं पूज सकोगे। जब मैं तुम्हारी शब्द-रंजित, वाणी-विलासमयी और दिखावटी प्रार्थना को सुनता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है, मानो निर्जल घटा की व्यर्थ ध्वनि हो रही हो। वह ध्वनि मेरे मधुरश्रावक कानों के लिए कर्कश बन जाती है। अपने मित्रों की प्रशंसा करो, महिमा का बखान करो; जोर से, और जोर से, ताकि वे सुन तो सकें – किन्तु मुझे यह नहीं चाहिए, मैं तुम्हारी सच्ची और मूक प्रार्थना का भिखारी हूँ। तभी तुमको संसार की परमोच्च उपत्यका से ऊपर महामहिमामय प्रदेश की ओर ले जा सकता हूँ, जहाँ पर दो एक हो जाएँगे।

मैं कहते आ रहा हूँ कि मुझे चलते-फिरते मंदिर चाहिए, जहाँ मैं अपने को विशाल पूजा का प्रतीक बना सकूँ। यह मंदिर और यह मस्जिद तथा गिरजे, और यह पगौडे मुझे कभी नहीं पूज सकेंगे, जब तक प्रत्येक प्राणी ही सजीव मंदिर न बन जाये – ये तो केवल मिट्टी के ही रूप-विरूपान्तर हैं। 'जिस जगह बैठा हूँ मैं, वो ही मंदिर है मेरा' यह सच है और यही सच है। उसी मंदिर में मैं अपनी महिमा को व्यक्त कर सकूँगा, और मंदिर के पुजारी को नित्य तृप्त और आप्तकाम बना दूँगा।

यदि मनुष्य सोचता है कि मंदिरों और मस्जिदों के देवता की शक्ति के बल पर वह विश्व की महोच्च महिमा को प्राप्त कर सकेगा, तो यह उसका दिवास्वप्न है। क्या घण्टी बजाने, धूप जलाने तथा दीपक दिखलाने से ही वह अपनी मुक्ति को सिद्ध कर सकेगा, जबकि अपने-अपने मंदिर में अंधकार है, दुर्वासना है और अरण्य विजनता है? यदि वह इसी पर विश्वास करता रहेगा तो वह मंदमति है – नहीं, नहीं महामूर्ख है। मंदिरों के बावजूद भी, नित्यप्रति दिनभर घंटियों के हिलते रहने पर भी युद्ध, क्रांति, अशांति और नरक-यंत्रणा वैसे ही रहेंगे। जब तक मनुष्य घट-घट में आत्मा की पूजा नहीं करेगा, तब तक वह सच्ची शांति नहीं पा सकेगा और सच्चे जीवन में दीक्षित भी नहीं हो पाएगा।

मैं मंदिरों से ऊँचा हूँ और गिरजों, पगौडों, विहारों और मठों से भी ऊँचा – विश्व की सर्वोच्च उच्चता से भी ऊँचा – मुझसे ऊँचा और कोई नहीं। मुझे चलते-फिरते मंदिरों में बसना प्रिय है। मैं सत्य की रक्षा करने वाला हूँ। मेरा वरदहस्त वहाँ पर अवश्य है, जहाँ व्यक्ति ने अपनी आत्मा को स्वच्छ कर लिया हो, अपने मंदिर में ज्ञान की आरती जला ली हो और सद्गुणों की सुरभित धूप बाल ली हो और

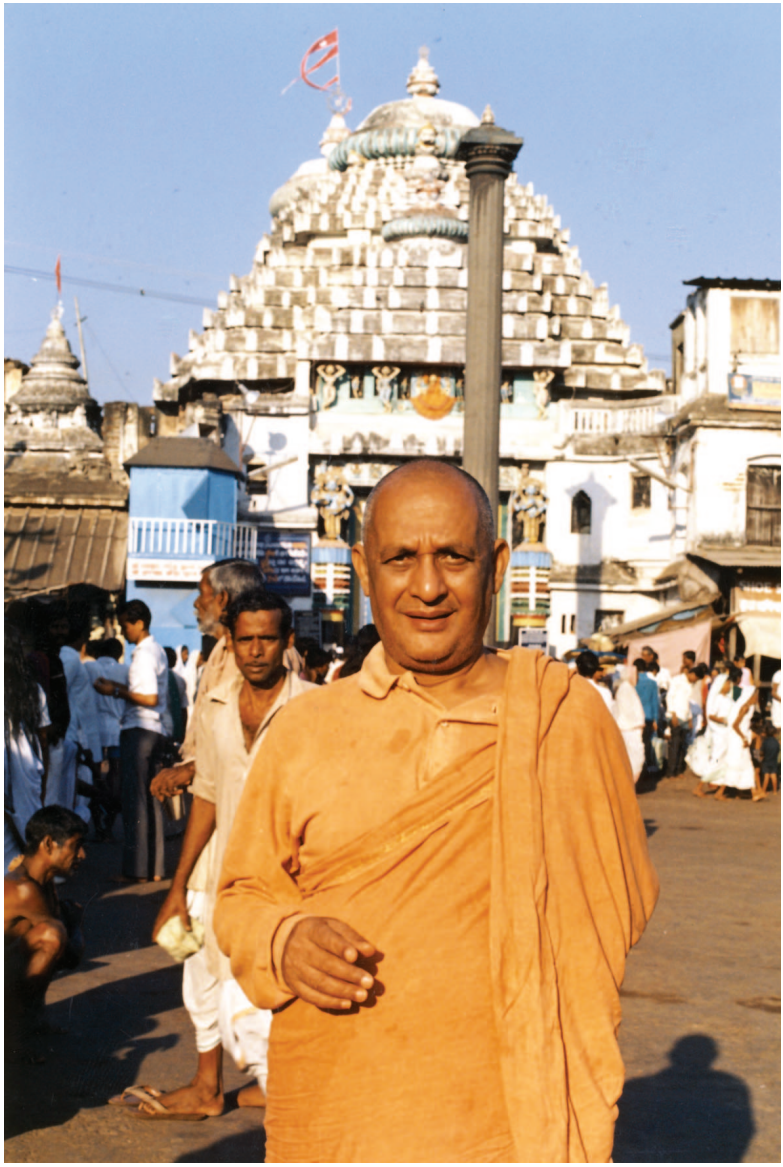

सद्विचारों की घण्टी भी बजा ली हो। अत: हे! आओ, मंदिर बनो – जहाँ मैं सदा बैठकर तुम्हें असत्य से सत्य, मृत्यु से अमरत्व और अंधकार से प्रकाश, विनाश से नवनिर्माण की ओर प्रेरित करते रहूँगा।

मंदिरों से ऊपर उठो – ऊपर और ऊपर। हाँ, अब मुझे पा सकोगे।

योग के नये क्षितिज

सामान्य लोगों में योग के विषय में अत्यन्त अस्पष्ट एवं प्राय: विचित्र धारणायें हैं। परन्तु जिन्हें इस प्राचीन योग विज्ञान की कुछ जानकारी है तथा जो इससे व्यावहारिक रूप से जुड़े हैं, उन्हें भी इसके अनेक सरल सत्यों को समझने में प्राय: कठिनाई होती है। यहाँ जो विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं, वे नये लग सकते हैं और संभवत: पहले के मान्य योग सिद्धान्तों का उन्मूलन भी कर सकते हैं।

आखिर ये नये विचार हैं क्या? सबसे पहले, योग अभ्यास के लिए व्यक्ति को घर-बार छोड़कर जंगल या एकान्त में जाने की आवश्यकता नहीं है। हम इस विचार को भी नहीं मानते कि योगाभ्यास केवल संन्यासी, योगी या साधु ही कर सकते हैं। दूसरी बात, वैवाहिक जीवन या गृहस्थ जीवन योगाभ्यास में बाधक नहीं है। तीसरी बात, जो मांसाहार करते हैं उन्हें मांसाहार केवल इसलिए नहीं छोड़ना है कि वे योग का अभ्यास करना चाहते हैं। योग का वास्तविक लक्ष्य है अपने अन्दर शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनी सामान्य जीवन-शैली को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

जीवन के संकटों से पलायन मुक्ति का मार्ग नहीं है। जीवन का युद्धक्षेत्र काल्पनिक नहीं है। दार्शनिकों को ऐसा लग सकता है, क्योंकि वे कल्पनालोक में रहते हैं, उनके पाँव धरती पर पड़ते भी नहीं। योग व्यावहारिक है और दार्शनिकों की काल्पनिक उड़ानों से इसका कोई सरोकार नहीं है। ऐसा कदापि नहीं समझिये कि गृहस्थ का जीवन संन्यासी के जीवन से निम्न है। स्त्रियों को भी यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि उनका स्थान पुरुषों से किसी प्रकार कम है।

आज योग को विश्व में एक विशेष भूमिका निभानी है। केवल इसके अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक क्लेश दूर हो सकते हैं। यह हमारे हृदय एवं घर-परिवार में खुशियों का संचार कर सकता है। योग आत्मानुशासन एवं व्यवहार के आदर्शों की असाधारण शर्तें नहीं लगाता है। आप जीवन के सुखों का भोग करते हुए भी योगी हो सकते हैं। योगाधारित जीवन के लिए अपनी सांसारिक महत्त्वाकांक्षाओं और भौतिक इच्छाओं को छोड़ना आवश्यक नहीं है। लेकिन साथ ही व्यक्ति को अपनी वासनाओं का दास भी नहीं होना चाहिए।

योग का निष्ठावान् साधक उस सागर के समान अविचिलित रहता है, जिसमें अनेक वेगवती नदियों की उग्र जलराशि समाहित होती है। इन्द्रिय-सुख का आनन्द लेता हुआ योगी इतना सतर्क अवश्य रहता है कि इन्द्रियाँ उसके ऊपर हावी न हो जाएँ। योग जीवन से घृणा करना नहीं सिखाता। जंगल में जाकर एकान्त समाधि में बैठने का आनन्द लेना कोई विशिष्ट गुण नहीं है। जीवन की हलचल में भी अडिग

खड़े रहना शूरता है, विशेष रूप से उस समय जब सभी चीजें हमारे विपरीत जा रही हों। विषमताओं के मध्य सन्तुलन प्राप्त करना ही समाधि है।

डॉक्टर यदि चाहे कि स्वस्थ व्यक्ति ही उसके दवाखाने में आएँ तो वह सही डॉक्टर नहीं हो सकता। उसी प्रकार यदि शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति पर ही योग का चमत्कार प्रकट हो सकता हो तब यह जीवन का अपूर्व विज्ञान नहीं रह जाएगा। तब तो इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जायेगा। एक अत्यन्त विवेकपूर्ण विज्ञान होने के कारण यह जीवन की सभी परिस्थितियों में, सभी व्यक्तियों को लाभ पहुँचा सकता है। प्रतिदिन के शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम के पश्चात् यह व्यक्ति में पुन: शक्ति, ऊर्जा एवं सन्तुलन ला सकता है।

सांसारिक मनुष्य का जीवन एक अनवरत यज्ञ है। घर के चूल्हे को जलता रखने तथा अपने सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों को पूरा करने के निमित्त किये गये कार्य उस यज्ञ की आहुतियाँ हैं। एक बार यह सत्य समझ में आ जाये तो अपने जीवन की स्थिति के अनुसार अहर्निश कठिन श्रम के मध्य भी जीवन में आत्म-साक्षात्कार की झलक को प्रखर रखा जा सकता है।

जीवन के संघर्ष में चल रहा अनवरत कार्यकलाप अपना प्रभाव डालता ही है। चिन्ता, निराशा, शरीर और मन की थकान, सभी मिलकर हमें वृद्धावस्था की ओर ही अग्रसर करते हैं। इन विनाशकारी शक्तियों के विरुद्ध योग एक सशक्त उपाय है। चाहे व्यक्ति जीवन की दहलीज पर हो, युवावस्था में हो या जीवन के अन्तिम चरण की ओर अग्रसर हो, वह योगाभ्यास सीख सकता है, कर सकता है। योगाभ्यास के लिए कोई प्रतिबन्धक तत्त्व नहीं है।

भारतीय शास्त्रों में वर्णित अष्टांग योग ही एकमात्र योग नहीं है। नियमित रूप से किये जाने पर आसन-प्राणायाम, जप, नादयोग और त्राटक जैसे सरल अभ्यास भी प्रभावशाली हैं। कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग – ये सभी योग के विभिन्न पक्ष हैं। संगीत भक्तियोग का अभिन्न अंग है, दमित भावनाओं और उत्तेजित मन पर इसका शान्तिप्रद प्रभाव पड़ाता है। इतनी दूर क्यों जायें, जीवन स्वयं ही योग है। हमारे दैनिक कर्म योग हैं। योग का क्षेत्र विशाल है, यह आपके स्वागत के लिए तैयार खड़ा है। आइये, योग के उमंग और उत्साह को अपनाकर अपने जीवन का कायाकल्प कर डालिये।

योग एक विवेकपूर्ण विज्ञान है, जिसमें अशान्त मन को शान्त करने, शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाओं को दिशान्तरित करके दृढ़ता एवं स्थिरता बनाये रखने की विधियाँ हैं। संक्षेप में योग का लक्ष्य एक समन्वित व्यक्तित्व का विकास है। मनुष्य को बुद्धि सम्पन्न ही नहीं होना है, और न उसे पूरी तरह से भावना प्रधान ही होना है। दोनों का सुखद संयोग होना चाहिए, अन्यथा जीवन में शान्ति नहीं रह पायेगी। इसका सटीक उपाय है भक्ति, कर्म, ज्ञान एवं राज योग का सुन्दर संयोग।

योग शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह संस्कृत के युज् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है जोड़ना। सबके सुख-दु:ख से जुड़िये। अपने हृदय को उदार बनाइये और जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठिये। योग को यदि हम लोग इस अर्थ में लें तो यह व्यक्तिपरक नहीं रह जाता। जैसे माता और सन्तान में भावनात्मक एकात्मता रहती है उसी प्रकार अपने परिवेश के साथ भावनात्मक एकात्मता विकसित कीजिये।

योग शारीरिक और मानसिक, दोनों स्तरों पर स्वास्थ्य तथा कल्याण लाता है। दु:खी मानवता के लिए यह मनोदैहिक चिकित्सा पद्धति के रूप में एक वरदान है। सत्य के अन्वेषकों के लिए यह ईश्वरानुभूति की सीधी राह है। वस्तुत: योग पूर्णता की योजना है। आप इसे एक कार्यक्रम, एक प्रणाली या एक दर्शन के रूप में ले सकते हैं। निश्चित लक्ष्यों एवं ध्येयों के साथ यह आन्दोलन का रूप ग्रहण करता है, तब यह एक कार्यक्रम है। यह एक प्रणाली इस अर्थ में है कि योग के अभ्यास सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक हैं। मनुष्य की आध्यात्मिक रुचि जिस भी दिशा में हो, ध्यान तथा योग के अन्य अभ्यास सदा उपयोगी हैं। आत्म-साक्षात्कार की कुछ ही प्रणालियाँ सारे विश्व में इतनी मान्य एवं साध्य हैं। योग एक सार्वभौमिक पद्धति है, वस्तुत: आत्म-साक्षात्कार का राजमार्ग है।

क्या आप एक सुखी, स्वस्थ और समस्वरित जीवन जीते हैं? क्या आप अपने दैनिक कार्य-कलापों में उत्साह से भरे रहते हैं? जब प्रतिकूल परिस्थितियाँ आपको झकझोर देती हैं, तब क्या आप शान्त मन और सहज आत्मविश्वास के साथ अपना सिर ऊँचा रख पाते हैं? यदि नहीं, तो फिर योग की शरण में आइये।

साक्षी का तात्पर्य

साक्षी वेदांत का शब्द है, जिसका अर्थ गवाह या द्रष्टा होता है। जब आप मंत्र का जप करते हैं तो जानते हैं कि आप मंत्र जप कर रहे हैं। आप यह भी जानते हैं कि आप जो कुछ कर रहे हैं, उसकी जानकारी आपके व्यक्तित्व के एक भाग को भी है। आपके अन्दर देखने वाला यही अंश साक्षी कहलाता है। जब आप शान्तिपूर्वक ध्यान करने के लिए बैठते हैं, तो कुछ समय के लिए अपने प्रतीक का अनुसरण करते हैं। कुछ समय बाद जब आपका प्रतीक स्थिर हो जाता है तब आप अपने अन्दर यह देखने का प्रयास करते हैं कि उस प्रतीक के प्रति कौन सजग है। कौन विचारों के प्रति सजग है? कौन लोभ के प्रति सजग है? और कौन ज्ञान के प्रति सजग है?

हममें से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर साक्षी होता है, जो हमारे समस्त कार्यों तथा विचारों का आजीवन प्रत्यक्ष गवाह रहता है। भले ही आप गहरी नींद में सो रहे हों, तब भी आप इसके साक्षी हैं कि आप सोये थे। यदि मैं सुबह आपसे पूछूँ, 'रात में कैसी नींद आई?' तो आप कहेंगे, 'बहुत बढ़िया'। यदि आप सोए थे, तो आपने यह कैसे जाना? इसका कारण यह है कि उस समय आपके भीतर का साक्षी जाग रहा था।

चेतना के स्तरों में परिवर्तन होने पर भी व्यक्ति के भीतर का साक्षी बदलता नहीं है। अपने पचास-साठ वर्षों के जीवन में भी हम जानते हैं कि हम वही व्यक्ति हैं, जो प्रारम्भ में थे। इसी जानने वाले को साक्षी कहा जाता है। जब आप योग और ध्यान का अभ्यास करते हैं तो आपको लंबे समय तक अपने भीतर के इस साक्षी को देखना चाहिए और जब वह कुछ स्थिर हो जाये, तो पुन: अपने भीतर प्रविष्ट होकर उसे अनुभव करना चाहिए।

ध्यान में तीन घटक सन्निहित हैं – ध्येय, ध्याता और ध्यान की प्रक्रिया। प्रारम्भ में तो मात्र ध्येय और ध्यान की प्रक्रिया की जानकारी रहती है। एक बार ध्यान की प्रक्रिया के परे जाकर ध्यान को स्थिर कर लेने के बाद, धीरे-से पलटकर

अपने भीतर के द्रष्टा को देखने का प्रयास करना चाहिए। ध्याता को देखते हुए उस पर ध्यान कीजिये। इसे ही ध्यान में साक्षी कहा गया है।

प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्य रूप से मानसिक तथा भावनात्मक उथल-पुथल का शिकार होता है। दु:ख और सुख दोनों ही इसके कारण हो सकते हैं। जीवन में सफलता और असफलता, दोनों ही मन को उद्वेलित करते हैं। जब भी आपको इस द्वन्द्वात्मक ज्वार-भाटे का सामना करना पड़े, थम जाइये, भीतर मुड़िये और अपने भीतर के उस अंश को पकड़िये, जिसे ये अनुभव हो रहे हैं। देखिए, आपके भीतर कौन दु:खी है, कौन सुख से कुलाचें भर रहा है, कौन उदास बुझा-बुझा रुदन कर रहा है। यदि आप स्वयं को दिनभर भागता, दौड़ता, व्यग्र, व्यस्त, प्रसन्न, उदास अथवा रोता-चिल्लाता देख सकें, तो आपके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा। एक समय ऐसा आता है जब आपको ये सब बातें व्यक्तिगत विशिष्टता के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगतीं।

मैं नहीं समझ पाता कि आज से पैंतालीस-पचास वर्ष पूर्व मेरे साथ ऐसी ही घटना क्यों और कैसे घटित हुई। मैं एकाएक स्वयं को देखने लगा। मैं स्वयं को खेलता, पढ़ता, दौड़ता, सिनेमा तथा बाजार जाता देखने लगा। मैं स्वयं को लड़ता, प्रेम एवं घृणा करता, भिक्षा माँगता, खाता, पीता तथा सोता देखने लगा। यह सब कुछ इतना स्पष्ट दिखता था, मानो मैं टेलिविज़न देख रहा होऊँ। मुझे यह सब बड़ा विचित्र लगता था। मैं स्वयं पर हँसता और मुझे ऐसा लगता, मानो मैं यह सब कुछ एक प्रकार के पागलपन के दौरे में कर रहा हूँ। परन्तु यह अनुभव अधिक दिनों तक नहीं टिका। मैं पुन: सामान्य हो गया और अपने रोजमर्रा के कार्य करने लगा। परन्तु इस अनुभव की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई। मैं अपने समस्त कार्यकलापों का साक्षी बनता रहा। कर्म और साक्षी में इतना अधिक तादात्म्य रहता है कि कभी-कभी तो यह जानना ही मुश्किल हो जाता है कि हम क्या कर रहे हैं।

कल्पना कीजिये कि मैं छाया की तरह आपके साथ रहता हूँ। आप जो कुछ करते हैं, शयनागार से स्नानागार तक जो कुछ भी सोच-विचार करते हैं, मैं उन्हें जानता हूँ। बोलिये, ऐसी स्थिति में मैं आपके विषय में क्या सोचूँगा? मुझे आप बड़े दिलचस्प व्यक्ति लगेंगे। बस यही प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति को अपने साथ करना चाहिए। इसे साक्षी होने की साधना कहते हैं और इसी का अभ्यास हम अन्तर्मौन के रूप में करते हैं। अन्तर्मौन वह तकनीक है जिसमें आप अपने विचारों पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं रखते। आप केवल अपने मन को वह सब कुछ देखने के लिए कहते हैं जो आपके भीतर चलता रहता है। आप क्या देख रहे हैं, सोच रहे हैं तथा अनुभव कर रहे हैं, आपका मानसिक तथा भावनात्मक व्यक्तित्व, आपके बौद्धिक अनुभव, आप उन सबके साक्षी बन जाते हैं। आप उन सबको एक साथ देखते हैं। इस प्रकार कर्मों का क्षय होता है तथा मन में संतुलन स्थापित होता है।

ईश्वर पर विश्वास

दु:ख और सुख दिन-रात की तरह आते जाते रहते हैं। जो दु:ख में रोता और सुख में हँसता है, वह हँसता है या रोता है? वीरों की बातें हैं, वे न हँसते हैं और न रोते हैं।

जो जीवन को भूलता और ईश्वर को भजता है, वह कुछ गलती कर रहा है। जो ईश्वर को भूलता और जीवन को भजता है, वह बीरबल की खिचड़ी पका रहा है। जो ईश्वर को भी भजता और जगत् को भी भजता है, वह 'दो नावों पर पैर' वाली कहावत के परिणाम को पाता है, पर जो जीवन और ईश्वर को एक ही रूप में भजता है, सचमुच वही भजता है।

जीवन का दूसरा नाम कर्म है या व्यवहार?

ईश्वर का दूसरा नाम धर्म है या परमार्थ?

धर्ममय कर्म या परमार्थिक व्यवहार या ईश्वर रूप जीवन इसे ही कहते हैं। जीवन और ईश्वर को एक ही रूप में भजना। अपने कर्मों में उत्साह, धैर्य, लगन और उपकार का सौंदर्य जटित होना चाहिए। तभी कर्म साधारण कर्म न रह कर ब्रह्म-कर्म या सेवा-धर्म बन जाते हैं।

मैं सोचता था कि दरिद्रता और आर्थिक अभाव से मानव दु:खी और चिन्तित है, फिर कभी मन में विचार आता था कि रोग और शारीरिक कष्टों के कारण हमारा जीवन दु:खी रहा है। इसी प्रकार के कई और कारणों का विचार मेरे मन में आता था।

पर अब मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है कि न तो दरिद्रता, न अर्थ का अभाव, न शरीर का दु:ख, न पुत्र का अभाव, न सांसारिक विफलता, न दैवी अभिशाप, हमारे जीवन में कष्ट और चिर-पीड़क दु:ख दे सकते हैं। सुन्दर स्त्री हो, तो भी दु:ख और अभाव की अनुभूति होती है। प्रचुर धन हो, समाज में प्रतिष्ठा हो, राज्यसभा और जनता के बीच हमारी जय-जयकार मनाई जा रही हो, लोग हमारी विद्वत्ता की धाक माने बैठे हों, तो भी सच कहूँ, मैंने देखा कि मनुष्य के अन्तस्तल में अभाव का शूल खटकता है। वे कहते हैं, स्वामीजी जीवन में सुख का अभाव नहीं है, शान्ति का उपाय बताइये।

गंगोत्री के गहन जंगलों, दुर्गम्य स्थानों में रहने वाले देहातियों की बात छोड़िये, तपस्वियों के जीवन भी सुखी नहीं है। उन्हें कोई दु:ख खटकता रहा है, तभी तो उससे छूटने के लिए वे प्राणपण चेष्टा कर रहे हैं। देह को गलाने वाली हिमाच्छादित गुहाओं में निवास कर रहे हैं।

वाराणसी में भी मैंने पण्डों से पूछा, क्योंकि वे नित्य देवता की सान्निध्य में रहा करते हैं कि उन्हें शान्ति मिल चुकी होगी। मगर उन्हें पैसों का अभाव खटकता है। देवता की सान्निध्य ने उन्हें शान्ति का वरदान नहीं दिया। जो देवता किसी को पुत्र

देते, किसी को धन, किसी के रोग हरते, किसी का शोक हरते, उन्हीं के चरणों में रहने वाले व्यक्ति महापाप रूपी दु:ख से ग्रस्त हैं। फिर मैंने इतिहास के पन्ने उलटे, बहुत दूर नहीं यही ढाई हजार वर्ष पूर्व गया। पन्नों में लिखा था – बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुअ, शान्ति मिली।

जब मध्य रात्रि के समय उठने वाले प्रेम और घृणा, ममता और वात्सल्य, संसार, सुख और राजभोग के विचार ब्रह्म मुहूर्त्त तक शिथिल हो गये, विषय चिन्तन की गरमी शीतल हो गई, मन में से शैतान, कामवासना और दंभ का निर्वाण हो गया। सिद्धार्थ बुद्ध बन गये। उन्हें शान्ति मिल गई।

भटकते-भटकते एक मनुष्य अपनी आँख फोड़कर बैठ गया। उसे भी सान्त्वना मिलने लगी, वरदान मिलने लगा। उसके पद हमारे आज समस्त समाज को शान्ति देते हैं। जन जन के ताप और दु:खों को हरते हैं।

तब ईश्वर का विस्मरण और भोगों की वर्षा में भी घूमना हमारी अशान्ति का कारण हुआ। जिस व्यक्ति ने भोगों के कारक में ईश्वर स्मरण की जोत जलाई, जिसने भोगों की घड़ी में ईश्वर स्मरण से त्राण पाया, वह बच गया, शान्ति पा गया।

आप कहेंगे कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ, पर मैं इतनी जल्दी धोखे में आने वाला प्राणी नहीं। क्या आप अपने विश्वास को कसौटी पर उतार कर खरा सिद्ध करोगे? तो क्या लाखों-करोड़ों मानव जो दिन-रात स्तोत्र पढ़ते हैं, पूजा करते हैं, ईश्वर में विश्वास करते हैं? तब समाज में इतना आतंक क्यों? व्यक्ति-व्यक्ति के तन-मन इतने विकल क्यों?

ईश्वर-विश्वास, ईश्वर की सृष्टि पर विश्वास करना है। आस्तिकता के बल भगवान हैं, ऐसा मान लेना है। 'भगवान है' मान लेने से काम नहीं चलेगा। ईश्वर पर विश्वास जमाकर सारे कार्य इसी भावना को केन्द्र बिन्दु बनाकर करने पड़ेंगे।

ईश्वर-विश्वास का यह अर्थ भी नहीं कि आप और हम उन पर से अपना विश्वास हटा दें और कहें कि ईश्वर सत्य है तथा और सब असत्य है। यह और सब भी क्या बला है? मैं इस और सब को खोज रहा हूँ, पर सत्यम् को तो एक ही सत्यम् मिला है, और सब को नहीं मिला।

ईश्वर-विश्वास का अर्थ कर्म या धर्म से विमुख होना भी नहीं, जीवन से लेकर मरण तक के कर्म और धर्म ईश्वर-विश्वास की साधनाएँ हैं। अखिल जगत् के कीट, पतंग, मातंग, भृंग, कुरंग, आदि सभी ईश्वर-विश्वास के पुजारी हैं। यह स्वर जो हमारी भूमि से उठ रहा है, ईश्वर-विश्वास की चिर अलख है।

मानव-विश्वास को ईश्वर-विश्वास से अलग नहीं किया जा सकता। इस वसुधा में एक वस्तु सार और दूसरी नहीं, ऐसा भी नहीं कह सकते। तब जरूरत है कि हम मानव-विश्वास को ईश्वर-विश्वास में सम्मिलित कर दें। जब तक मानव-विश्वास की सिद्धि नहीं मिलेगी तब तक हमारा ईश्वर-विश्वास निरर्थक रहेगा।

हमें समाज को अपना सहयोग या योगदान देना है। अपनी कर्मशक्ति को जगाओ। जब तक कर्म की वेदी पर आपका खून और पैसा पसीना बनकर नहीं निकलता, तब तक तपस्या पाखण्ड, पूजा दम्भ, गृहस्थी पाप और योग निरर्थक है। आओ, अपनी कर्मेन्द्रियों को जाग्रत करो।

परिवार के प्रति आपका योगदान पूरा हुआ। सन्तति के प्रति भी आपका सहयोग पूरा होने जा रहा है। अपने भाई-बहनों के प्रति आपने क्या किया है? संवत्सर पर संवत्सर बीतते जा रहे हैं, पर हम भारतवासियों के मन में यह बात क्यों नहीं है? पढ़े-लिखे शिक्षित कहे जाने वाले लोग भी या तो अन्धविश्वास या मतवालेपन में डूबे हुये हैं। धन और जन का दुरुपयोग हो रहा है। ईश्वर-भक्ति कुण्ठित होकर बैठी हुई है। इस अमोघ अस्त्र को उठाओ, जगत् जगमगा उठेगा।

मैं ईश्वर-विश्वास को इतना संकीर्ण नहीं समझता जितना इन देहातियों ने बनाकर रखा है। मैं महात्मा गाँधी के ईश्वर-विश्वास को खरा मानता हूँ। स्वामी शिवानन्द जी के ईश्वर-विश्वास को सच्चा मानता हूँ। शेष तो मुझे गिरजे का घण्टा या मन्दिर का शंख ही मालूम पड़ता है। इनसे ऊपर उठो, ईश्वर-विश्वास की परिधि को विशाल बनाओ। अपने जीवन को, परिवार और दैनिक कार्यों को व्यवस्थित और नियमित करो। अपनी आवश्यकता को सीमित रखो। सन्तति और परिवार के उत्तरदायित्व को बोझ न समझो, यह तो ईश्वर-विश्वास की चिरन्तन साधना है। परिवार के उत्तरदायित्व, आत्मकल्याण और मानव सेवा के सिवाय शेष सब व्यर्थ है, अभिशाप है। उनके बन्धनों को तोड़ो और मुक्त हो जाओ, यही मुक्ति है।

एकाग्रता और प्रतिभा

जब चित्त की वृत्ति एकाग्र होती है, जब मन एक जगह लग जाता है, तब उसमें कुशलता आ ही जाती है। जितने बच्चे कुशाग्र होते हैं, वे इसलिए कुशाग्र होते हैं कि उनकी बुद्धि एकाग्र होती है, उनका चित्त एकाग्र होता है। जो बच्चे एकाग्रता हासिल नहीं कर सकते और जिनका मन चंचल रहता है, वे कभी मेधावी नहीं बन पाते हैं। कुशलता का आधार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है।

मन का एक समय में एक ही स्थान पर रहना एकाग्रता है। मन का एक समय में कई जगहों पर रहना विक्षेप है। जैसे यहाँ एक छोटी-सी बैट्री है, उस बैट्री से माईक चल रहा है, टेप-रिकार्डर भी चल रहा है, कई चीजें चल रही हैं। इसका मतलब बैट्री की ऊर्जा तीन-चार जगह बँट रही है। पर अगर अन्य उपकरणों को बन्द कर दिया जाए और केवल एक जगह उसकी बिजली जाए तो वह घनीभूत हो जाती है।

ज्यादातर लड़के-लड़कियों, आदमी-औरतों के मन के अन्दर जो मानसिक ऊर्जा होती है, वह सीमित होती है। कुछ लोग बहुत विचित्र होते हैं, उनका मन कितनी ही चीजें सोच सकता है। लेकिन अधिकतर लोगों के मन की ऊर्जा सीमित होती है, और उसी सीमित मर्यादा में यदि वे अपने मन का उपयोग एक समय में एक ही चीज पर करें तो कुशलता की प्राप्ति हो सकती है। पर यदि वे अपने मन की शक्ति का उपयोग एक साथ कई चीजों में करेंगे तो मन विशृंखल हो जाएगा।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि हम अपने मन का उपयोग इतनी जगहों पर करते हैं कि मन ठप्प पड़ जाता है। मैं यहाँ वैज्ञानिक बात कह रहा हूँ। इससे दिमाग

पर आघात भी हो सकता है। दिल पर या शरीर के किसी भी अंग पर इसका असर हो सकता है, क्योंकि मनुष्य के मन के अन्दर की शक्ति सीमित है। इसलिए हम लोगों के यहाँ हमेशा एकाग्रता पर जोर दिया जाता है।

एकाग्रता शून्यता नहीं है

योग में ही नहीं, अन्य परम्पराओं में भी एकाग्रता और उससे सम्बन्धित अभ्यासों पर जोर दिया जाता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह एक-आध घण्टा कोई ऐसा अभ्यास करे, जिसमें उसको न शब्द सुनाई दे, न स्पन्दन का आभास हो, न किसी की उपस्थिति का ख्याल हो, न अपना अनुभव हो। केवल किसी एक चीज का ख्याल बना रहे, सुषुप्तिवत् निद्रा की तरह। निद्रा नहीं, निद्रा की तरह कहा है मैंने। यह जागृति और निद्रा के बीच की एक मध्यम स्थिति है, जिसको कहते हैं 'सविकल्प'। यहाँ पर थोड़ा-सा मन रहता है, और केवल एक चीज का अनुभव होता है।

इसे शून्य स्थिति नहीं कहते हैं। हमारे वैदिक धर्म में या योग में शून्य नहीं कहा गया है। बौद्ध दर्शन में शून्य कहा गया है। मन को शून्य नहीं होना चाहिए, मन में कोई चीज रहनी चाहिए। मन में निराकारिता नहीं होनी चाहिए। उस अवस्था में भी कोई प्रतीक जरूर रहना चाहिए, चाहे शब्द का प्रतीक हो या रूप का या ज्योति का। यह चीज अभ्यास करने वाले को अपने आप समझ में आ जाती है।

प्रतिभा की जननी

एकाग्रता ही सारी प्रतिभाओं की जननी है। एक होता है कर्म और एक होती है प्रतिभा। लोग खेती का काम करते हैं, रोटी बनाते हैं, दुकान चलाते हैं, दफ्तर चलाते हैं, बैंक चलाते हैं, सब तरह के काम करते हैं। दुनिया के छ: अरब लोग अपना-अपना कर्म करते रहते हैं। प्रतिभा वह कर्म नहीं, बल्कि एक विशिष्ट चीज होती है। प्रतिभा एक विभूति है, एक अलग चीज, जो चमकती है। उस प्रतिभा का जन्म होता है एकाग्रता से।

एकाग्रता बड़ी विचित्र चीज है। एक कहानी हमको याद आती है। एक बहुत बड़े वैज्ञानिक थे, उनका नाम था आइज़ैक न्यूटन, जिन्होंने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त दिया। उनको एक मित्र ने एक बार अपने घर पर भोजन के लिए बुलाया। न्यूटन वहाँ शाम को चले गये। जब वहाँ पहुँचे तो मेजबान वहाँ थे नहीं। न्यूटन उनके ड्रॉइंगरूम में जाकर बैठ गये। पूरी रात बैठे रहे, लेकिन मेजबान आये नहीं। सबेरे जब उनके मेजबान लौटे तो उन्होंने न्यूटन को बैठे हुए देखा। उन्होंने कहा, 'क्षमा करना, मुझे कल शाम को समाचार मिला कि कोई करीब का रिश्तेदार मर गया। तो मैं उसके अन्तिम क्रिया-कर्म में चला गया था। मगर मैं तो यहाँ कागज पर लिखकर गया था।'

वास्तव में वहाँ कागज रखा था, जिसमें लिखा था कि मैं जा रहा हूँ, आज का भोज रद्द कर दिया गया है। पर न्यूटन को उस कागज से क्या मतलब? वे तो बैठकर गणित के पेचीदे मुद्दों पर सोचते रहे। उनका चित्त गणित में इतना तल्लीन था कि उनको यह भी मालूम नहीं चला कि रात बीत गई। उनको यह भी मालूम नहीं पड़ा कि जिसने मुझे बुलाया, वह लापता है। इसको कहते हैं एकाग्रता।

संगीत और कीर्तन

एकाग्रता का आधार है – सुख, रुचि और प्रीति। जिस चीज से तुमको सुख मिले, जिसमें तुम्हारी रुचि हो, प्रीति हो, उसमें एकाग्रता का सम्पादन स्वत: होता है। जबरदस्ती करने से कुछ नहीं होता। वैसे तो मनुष्य ने एकाग्रता के लाखों साधनों पर प्रयोग किए हैं। पार्वतीजी, जो शिवजी की पत्नी भी थीं और शिष्या भी, उनको शिवजी ने तंत्र में एकाग्रता के एक लाख पचीस हजार उपाय बताए। मगर आज तक मानव ने चित्त को एकाग्र करने के लिए जितने भी साधनों पर प्रयोग किया है, उनमें सर्वोत्तम साधन संगीत है।

जहाँ भगवान का नाम गाया जाता है, वहाँ चित्त की वृत्ति अपने आप खिसकते-खिसकते एक जगह पर आ सिमटती है। कीर्तन का मतलब होता है भगवान के नामों को गाना। जबकि भजन का मतलब होता है भगवान की लीला को गाना और प्रार्थना का मतलब होता है भगवान से कुछ माँगना। यहाँ न भजन की बात हो रही है न प्रार्थना की, यहाँ बात हो रही है नाम-संकीर्तन की। भगवान के कई नाम होते हैं, जैसे, राम, नारायण, शंकर, माँ, आदि। जैसे तुम गेहूँ के आटे को घुमा-फिराकर पूड़ी, पराठा, रोटी और अन्य पकवान बनाते हो, वैसे ही भगवान के कई नामों को इकट्ठा करके, उन्हीं को घुमा-फिराकर गाने को नाम-संकीर्तन कहते हैं।

संतों ने चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने का इससे उत्तम कोई साधन स्वीकार नहीं किया है। यह सबसे सरल, सटीक, सस्ता और सुरक्षित साधन है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगीनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान विष्णु ने नारद से कहा, 'नारद! मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, न ही योगियों के हृदय में रहता हूँ। जहाँ मेरे भक्त मेरा नाम गाएँगे, मैं वहीं रहूँगा!' चित्तवृत्ति को एकाग्र करने के लिए एक छोटा-सा ढोलक रख लो। घर में हम दो, हमारे दो तो होते ही हैं। एक रहे ढोलक वाला, दो मंजीरे वाले और एक गाने वाला। चारों पाँच-पाँच मिनट मिलकर गाएँ तो बीस मिनट हो जाते हैं। बीस मिनट में एकाग्रता का अभ्यास पूरा।

एकाग्रता एक दिन में सिद्ध नहीं होती है। जैसे कोई व्यक्ति एक साल में विश्वविद्यालय से पास नहीं होता, जैसे एक साल की उम्र में आदमी की दाढ़ी-मूँछ

पैदा नहीं होती, जैसे वयस्क बनने में कई साल लगते हैं, वैसे ही एकाग्रता बहुत धीरे-धीरे विकसित होती है। एकाग्रता युवती बनती है, फिर प्रौढ़ बनती है और अन्त में परिपक्व होती है। जब एकाग्रता परिपक्व हो जाती है, तब फिर चमत्कार होता है!

स्वामी विवेकानन्द जी पन्द्रह साल में गजब का काम कर गए। आदि शंकराचार्य का उदाहरण ले लो। बत्तीस साल में ही उनकी मृत्यु हो गई। आठ साल में उन्होंने घर छोड़ा, सोलह साल की उम्र में गुरुजी का आश्रम छोड़ा। उस छोटी-सी अवस्था में ही उन्होंने वैदिक धर्म का उद्धार कर दिया। बौद्धों के मठ एकदम बन्द हो गये। सोलह साल की अवस्था में उन्होंने दिग्विजय कर ली। यह परिपक्व एकाग्रता का परिणाम है। इसलिए मैं कहता हूँ कि एकाग्रता प्रतिभा की जननी है। यह प्रतिभा किसी भी क्षेत्र में अभिव्यक्त हो सकती है। व्यक्ति संगीत, विज्ञान, व्यापार या किसी अन्य क्षेत्र में प्रतिभाशाली हो सकता है। बिल गेट्स, हेनरी फोर्ड, टाटा, बिड़ला, अम्बानी – इनको प्रतिभाशाली नहीं कहोगे क्या?

कोई आदमी बड़े घर में पैदा हुआ या छोटे घर में, अमीर घर में पैदा हुआ या गरीब घर में, औरत के रूप में पैदा हुआ या मर्द के रूप में, सदाचारी हुआ या व्यभिचारी, प्रतिभा कुछ नहीं देखती। कालीदास का कोई घर था ही नहीं, वह वेश्याओं के पास रहता था। लेकिन क्या प्रतिभाशाली कवि था! प्रतिभा किसी की जाति, चरित्र, धर्म या लिंग नहीं देखती। यही बात हम हमेशा से कहते आ रहे हैं – पैसे के बल पर नहीं, बल्कि प्रतिभा के बल पर ही मनुष्य महान् बनता है। लेकिन एकाग्रता अर्जित करने के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। ऐसा नहीं कि आज छुट्टी है, या आज मेरे घर में कोई मर गया या बच्चा बीमार हो गया, इसलिए दो दिन अभ्यास से छुट्टी ले ली! नहीं! चाहे तुम खाना खाओ या न खाओ, चाहे तुम बीमार पड़ो या न पड़ो, लेकिन तुम्हें अपना अभ्यास अवश्य जारी रखना होगा।

योग के सिवा कोई चारा नहीं

मैं जहाँ-जहाँ योग के सम्बन्ध में बुलाया जाता हूँ, मुझे बहुत प्रसन्नता होती है कि मैं अपने देश की संस्कृति के लिये कुछ कर रहा हूँ। जैसे-जैसे मैं दुनिया की ओर नजर घुमाता हूँ और दुनिया की संस्कृति को देखता हूँ तो मेरा विश्वास पक्का होता जाता है कि योग मानव मात्र की संस्कृति है और बहुत ही शीघ्र वह समय आयेगा कि योग मनुष्य के जीवन का नियंत्रण करेगा। इसी आशा और विश्वास को लेकर न केवल आपके शहर में, बल्कि संसार के सभी राष्ट्रों में मुझे जाने का मौका मिला है। मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि जिस योग की बात आपके सामने करता हूँ, वह कोई धर्म नहीं और न धर्म विरोधी बात है, बल्कि यह एक विज्ञान है, इससे प्राप्त परिणामों को विज्ञान के तराजू पर तौला जा रहा है। यह योग दुनिया के हताश, निराश और दु:खी लोगों के लिये एक आशा का संदेश लेकर आया है।

मैंने बारह साल तक परिव्राजक जीवन व्यतीत किया, गाँवों में घूमकर भिक्षा मांगी है, सड़क के किनारे भी सोया हूँ और कई बार आप लोगों के दरवाजे से लौटा भी हूँ। आज मैं पूर्ण विश्वास एवं साहस के साथ कह सकता हूँ कि यदि संसार की मानसिक प्रवृत्ति को कोई संस्कृति या विचारधारा बदल सकती है तो वह योग ही है।

योग की उपयोगिता

मैंने कई बार पश्चिम में चर्च के मंच पर खड़े होकर कहा है, 'कैसा है तुम्हारा धर्म, जो आज तुम्हारे बच्चों को एल.एस.डी. के नशे से वापस नहीं कर सकता? कहाँ है तुम्हारे धर्म की शक्ति जो तुम्हारे बच्चों को निरंकुश होने से रोक नहीं सकती?' कोई भी धर्म अगर मानव समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता है तो वह फेल हो गया है। कोई भी दर्शन चाहे वह आध्यात्मिक दर्शन ही क्यों न हो, आर्थिक या राजनैतिक क्यों न हो, अगर वह मनुष्य की बदलती और बिगड़ती मानसिक प्रवृत्तियों को, समाज के टूटते ढाँचे को बदल नहीं सकता, तो उसे बदलना होगा। मैंने उन देशों में कहा कि योग ने हजारों-लाखों बच्चों को पागलखाने से मुक्ति दिलाई है। डेनमार्क के पागलखाने से तीन हजार पागल बच्चों को बहिर्गत किया गया, हमारे पास आँकड़े हैं और अभिप्रमाणित प्रतियाँ हैं। इन पागलखानों में इन लोगों ने हठयोग की क्रियायें की हैं और 6 महीने में ही ये लोग पागलखाने के बाहर आ गये हैं। अब वे लोग अपनी कमाई कर अपने परिवार की जिन्दगी चला रहे हैं। योग मानवता को रास्ता न बता सका हो, ऐसा एक भी उदाहरण आप मुझे दे दीजिये। हमने योग का अभ्यास नहीं किया, इसलिये हम दु:खी हैं। हमारे पूर्वजों ने अभ्यास नहीं किया, इसलिये वे गिर गये, मगर आज हमने कसम खाई

है, हम सीखेंगे और सिखायेंगे, करेंगे और करायेंगे। हमारी आने वाली सभ्यता के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मैं आप लोगों को आँकड़ों से साबित करके दिखा सकता हूँ कि जिस-जिस जगह योग आया है, वह चाहे एशिया हा या अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया हो या फ्रान्स, डेनमार्क हो या इंग्लैण्ड, अफ्रीका हो या हिन्दुस्तान, उसने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया है। फिर भी आज हमारे देश का आदमी लगन के साथ योग को नहीं ले रहा है, ठहरकर लेता है, सोच करके लेता है, डगमगा करके लेता है, अविश्वास के साथ लेता है। कहता है, योग को समझकर करो नहीं तो नुकसान हो जायेगा। अरे! जिस धड़ल्ले के साथ तुम कॉर्टिसोन या एनासिन लेते हो, क्या तुम उस धड़ल्ले के साथ योग को नहीं ले सकते हो?

मनुष्य की बीमारियाँ, उसके रोग कहाँ से शुरू होते हैं? मनुष्य को अपने जीवन की गहराइयों में जाना होगा और इसके मूल को पहचानना होगा, जिसका रास्ता योग के पास है। स्वामी सत्यानन्द या स्वामी शिवानन्दजी इसके आविष्कारक नहीं, हमने तो इसको मात्र पुनर्जीवित किया है। यह अनादि विद्या है और इस विद्या को आपके देश के ऋषि-मुनियों ने जाना था, क्योंकि मनुष्य दु:खी है, रोग से पीड़ित है, अपराध और आसक्ति से पीड़ित है, मोह से पीड़ित है। यही पीड़ायें उसमें रोग पैदा करती हैं, अम्ल, पित्त, दमा, कफ पैदा करती हैं। यह हमारे ऋषि-मुनि अच्छी तरह से जानते थे।

हमारी सभ्यता का आधार जीवन की स्वाभाविकता है। इसी को लेकर हम योग आन्दोलन को दुनिया में हर जगह फैलाते जा रहे हैं। कई देशों में मैं गया हूँ

जहाँ इसका विरोध हुआ है। वहाँ लोग डरते थे, पर आज ऐसी बात नहीं। आप लोगों को सुनकर खुशी होगी और सोचने का मौका मिलेगा कि अब जेलों और पागलखानों में भी योग सिखाने की व्यवस्था हो गई है। अब तो वहाँ के मनस्वी, मनोवैज्ञानिक और बुद्धिजीवी बराबर सामने बैठकर देख रहे हैं कि आसन-प्राणायाम करने से, मन्त्रों का जप करने से हमारे मस्तिष्क में परिवर्तन होता है, हमारी अल्फा तरंगें बढ़ती हैं, हमारे एड्रिनल हॉर्मोन्स संतुलित होते हैं। जेलों में उन्होंने कैदी लोगों के मस्तिष्क के आँकड़े लिये, उसके बाद उनको पता चला है कि अनुकूल परिवर्तन हो रहा है।

अब इससे बढ़कर आप समाज को क्या दे सकते हैं? मैं पूछता हूँ कि क्या इन्सान अपराध वृत्ति को पूर्णतया विनष्ट कर सकता है? क्या इन्सान मन के असंतुलन को जीत सकता है? आज इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने सत्ता के बल पर अपराधों को नहीं जीता। इन्सान बदलना नहीं चाहता है, वह मानता ही नहीं कि उसे बदलना है। केवल एक चीज इन्सान को बदल सकती है, वह है योग। इसके द्वारा आप अपने का बदल सकते हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ-जहाँ कैदी हैं, जहाँ-जहाँ दु:खी लोग हैं, वहाँ पर जब योग के अभ्यास जैसे हठयोग तथा ध्यान कराये जाते हैं तो मालूम पड़ता है कि उनके जीवन में, उनके मन में, उनके विचारों में परिवर्तन हो रहे हैं। उनके अवचेतन मन में होने वाले परिवर्तनों को देखकर एक बात कह सकते हैं कि इन्सान अगर अपराधों को विनष्ट नहीं कर सकता तो अपराधों को कम अवश्य कर सकता है।

हठयोग द्वारा मानसिक और प्राणिक शक्ति का संतुलन

आज समाज-शास्त्रियों एवं विचारकों को मैं एक विषय दे रहा हूँ। क्या चीज है जो मनुष्य को साधु बनाती है? क्या चीज है जिससे व्यक्ति अपराधी बनते हैं? हठयोग साफ-साफ कहता है कि प्राणशक्ति और मन:शक्ति के बीच में असन्तुलन होता है, तभी मनुष्यता या तो अतिसक्रिय बनता है या फिर वह निष्क्रिय बन जाता है। यह प्राणशक्ति, यह मन:शक्ति, जिसको योगशास्त्र में इड़ा और पिंगला कहा गया है, इसके अन्दर जब तक सामंजस्य, संतुलन नहीं होता, मनुष्य उग्र बनता है या पागल। हठयोग में स्पष्ट कहा है एक चन्द्रमा है जो मानसिक शरीर है और एक सूर्य है जो भौतिक शरीर है। मन और प्राण, यही दोनों मनुष्य के जीवन को नियंत्रित करने वाली शक्तियाँ हैं। इसी इड़ा व पिंगला, सूर्य व चन्द्र, गंगा और यमुना, प्राण और मन को अगर आप संतुलित रख सकते हैं तो आप जीवन में सुखी बन सकते हैं, सफल बन सकते हैं, क्योंकि जब प्राणशक्ति अधिक हो जाती है और मानसिक शक्ति उसे नियंत्रित नहीं कर सकती है तब आदमी अति क्रियाशील बनता है, उग्र हो जाता है, अनुशासनहीन बन जाता है। उसके पास प्राणशक्ति है पर मन का संतुलन नहीं है। मन की शक्ति के असंतुलन से वह मानसिक रोगों से पीड़ित हो जाता है। निराशा, विषाद, चिन्ता और असंतुलित व्यक्तित्व इसी गिनती में आते हैं, ये सभी मन की बीमारियाँ हैं। हठयोग इन्हें संतुलित करने को कहता है।

योग का कहना है कि शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ बहती हैं। जिस प्रकार बिजली की निगेटिव और पॉज़िटिव लाइनें हजारों तारों से हजारों घरों में जाती हैं, उसी तरह इड़ा और पिंगला से ये दोनों शक्तियाँ बहत्तर हजार नाड़ियों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होती हैं। इन बहत्तर हजार नाड़ियाँ में दस नाड़ियाँ प्रमुख हैं और इन दस नाड़ियों को नियंत्रित करने वाली तीन नाड़ियाँ प्रमुख होती हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। सारा योगशास्त्र इन तीन नाड़ियों पर कायम है। कुण्डलिनी योग और हठयोग का आधार यही तीन नाड़ियाँ हैं। हम जो भी करते हैं, ध्यान करते हैं, आसन करते हैं, प्राणायाम करते हैं, ये सब इन तीन नाड़ियों से सम्बन्धित हैं। अगर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना पर व्यक्ति का नियंत्रण है तो सारे जीवन पर मनुष्य का नियंत्रण रहेगा। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को ही योग शास्त्र में गंगा, यमुना और सरस्वती के नाम से जाना गया है। इस बात को अच्छी तरह समझना होगा। हमारा यह जो योगशास्त्र है, जिसके बारे में हम आपको आज समझा रहे हैं, यह कोई धर्म नहीं है, न कोई छोटा-मोटा व्यायाम ही।

योग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

दुर्भाग्यवश हमारे देश के लोगों के दिमाग में एक बात बैठ गई है कि योग बुढ़ापे में करेंगे। परन्तु जितनी भी भावनात्मक समस्यायें हैं, उन्नीस से पचीस वर्ष की

उम्र में होती हैं। जितना आक्रोश और हिंसात्मक भाव है सोलह से बीस वर्ष में होता है। बूढ़ा आदमी, जिसका कि सारा रस निचोड़ा जा चुका है, वह बेचारा क्या योग करेगा?

योग उन लोगों को करना है जिनको समस्यायें हैं। योग उनके लिये है जो रोग से पीड़ित हैं। योग परफैक्ट लोगों के लिये नहीं, योग रिटायर्ड के लिये नहीं, बल्कि टायर्ड के लिये है, जो थक चुका है, जिसके मन में उलझनें होती हैं, समस्याएँ होती हैं। मुझे तो उस उम्र की याद है, आपको याद आती है या नहीं, वह आप जानें। परन्तु मुझे याद है उस समय किसी प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता है, मिलता भी है तो गलत ही मिलता है और वह समझ में नही आता कि गलत है या सही। ऐसी अवस्था में बच्चे भटक जाते हैं। आप दोष देते हैं आर्थिक व्यवस्था को, मगर आप अपने बच्चे को तथा उसकी उलझनों और उसकी विकृतियों को नहीं देखते। उसके मन में जो मकड़ी का जाल पैदा हो रहा है, उस जाल को निकालने के लिये, सुलझाने के लिये कभी कोई प्रयत्न किया जाता है क्या? उसके लिये कोई उपाय सोचा है क्या? आप लोग एक चीज जानते हैं, वह बच्चा अच्छा है, यह बच्चा बुरा है। इसका मतलब कि आप लोग इसके अलावा कुछ नहीं जानते। आप जब उसके मन के बारे में कुछ नहीं जानते तो कैसे उसके मन को सुधारेंगे?

आप बोलेंगे, 'बेटा सच बोलो, सच बोलो' और बेटा झूठ बोलता है। वह बेटा झूठ नहीं बोलता, उसके मस्तिष्क में इतनी उलझन है कि वह निर्णय नहीं ले सकता कि क्या बोले। वह जो कुछ बोलता है, वह झूठ ही होता है। मनुष्य का मन बहुत गहरा है उस हिमखण्ड की तरह जिसका थोड़ा हिस्सा समुद्र के ऊपर तथा अधिकांश हिस्सा समुद्र के अन्दर हाता है। आप जानते हैं कि विचार, भावना, वासना तथा कल्पनायें, ये सब मन नहीं है। मन सजगता और चेतना है, पहले इसका विश्लेषण करो। तब जाकर आप अपने बच्चों का विश्लेषण कर सकोगे, उन्हें समझ सकोगे।

इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि सबको योग सीखना है। यह कहने से नहीं चलेगा कि हम बुढ़ापे में सीखेंगे। आज से आप लोग यह कहना छोड़ दीजिये कि छोड़ो भाई योग को, अभी तो मौज के दिन हैं, मौज करो। यह प्रवृत्ति बड़ी अवैज्ञानिक है, घातक है। आज योग एक विज्ञान के रूप में हमारे सामने आ रहा है जो मनुष्य की वासनाओं और गलत धारणाओं को, मनुष्य के अन्दर जो जाल पड़ गये हैं, जो भ्रम पैदा हो गये हैं, जो दोष पैदा हो गये हैं उनको दूर कर सकता है।

इसका एक उदाहरण सुन लीजिये। हमारे आश्रम में इंग्लैण्ड से एक स्वामी आया। वह इन्जीनियर था। उसकी एक बीमारी थी, डीप डिप्रेशन यानि गहन विषाद। वह अच्छा बुद्धिजीवी था, मगर सुबह आठ बज से लेकर शाम पाँच बजे तक उसे न तो सोने का मन करता, न बैठने का, न उठने का, न बोलने का और न चुप रहने का। उसे उठने का मन करता तो बैठ जाता, बैठने का मन करता तो खड़ा हो जाता।

मेरे से बात करने के विचार से आता परन्तु बिना कुछ बात किये चला जाता था। मैं उससे कहता, 'अरे! क्या चाहते हो, बोलो!' तो बोलता, 'पता नहीं क्या हो गया?' शाम ढलते-ढलते ठीक हो जाता था। बिल्कुल सामान्य, जैसे हम या आप हैं।

एक दिन बड़ी विचित्र बात हुई। हमारे आश्रम के सामने एक सूअर घूम रहा था, टट्टी खा रहा था। एक अंग्रेज के लिए किसी को टट्टी खाते देखना बड़ी विचित्र बात थी। उसे देखते ही उसके दिमाग में कोई चीज प्रवेश कर गयी और तुरन्त उसे एक बात याद आ गयी। बचपन में जब वह 8-10 वर्ष का था तो मछली पकड़ने जाया करता था। मछली पकड़ने के लिये वह डिब्बे में इल्ली बन्द करके रखता था। एक बार वह कहीं बाहर चला गया था। एक हफ्ते बाद जब वह लौटा तो मछली पकड़ने की फिर इच्छा हुई। सब सामान एक झोले में रखा और जब उसने डिबिया

खोली तो छोटे-छोटे कीड़े एकदम उसके मुँह में आ घुसे, क्योंकि इल्ली के तो पंख निकल आये थे। 8 साल के बच्चे के सामने बीस-तीस छोटे-छोटे कीड़े भनभना रहे थे और यह घटना उसके अवचेतन मन पर ऐसा असर डाल गयी जिसे साधारण मनुष्य तो क्या, मनोवैज्ञानिक भी समझ नहीं पाये। वह सोचने लगा, 'अरे, यह क्या हुआ, जरा सा डिब्बा खोला और इतने कीड़े उड़ने लगे? इसमें क्या है?' उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। यह जरूरी नहीं कि कोई घटना दर्दनाक, भयानक या दु:खदायी ही हो, परन्तु साधारण-से-साधारण घटना का असर भी मनुष्य की चेतना के भीतरी सतह पर पड़े बिना नहीं रह सकता।

एक मजबूत दिमाग वाला अंग्रेज वैज्ञानिक, जो पूरी दुनिया घूमा था, आक्यूपंक्चर वगैरह किया था, उसे आठ साल की उम्र में घटी एक छोटी-सी घटना, जो खतरनाक नहीं, जिसका कोई खास मूल्य नहीं, गहन विषाद में ले गई। आपके, हमारे, सबके जीवन में हजारों छोटी-बड़ी घटनायें घटती रहती हैं, तो संभव है आपके रोगों का कारण किसी ऐसी ही घटना के मूल में छिपा हो। इसे वैज्ञानिकों को देखना होगा। उस दिन उस व्यक्ति ने जो सूअर वाली घटना देखी, उससे उसकी वर्षों की परेशानी समाप्त हो गई। हमने उससे पूछा, 'क्या हुआ?' तो वह बोला, 'सब कीड़ों के साथ उड़ गया।'

मैं अपने जीवन की एक घटना के बारे में भी बता सकता हूँ। बचपन में मुझे शेर के शिकार की धुन थी। रात के बारह बजे तक मैं शेर के शिकार के लिये घूमता रहता था। लेकिन जैसे-जैसे शाम होती थी, मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मुझे कोई दबा रहा है। संन्यास लेने के बाद भी लगता रहा। न मैं साँप से डरता हूँ, न भूत-प्रेत से, मगर अंधेरा होने पर एक अजीब भय की यह स्थिति बनी रही। एक दिन की बात है, मैंने एक सड़ा हुआ अण्डा देखा और वह मेरे पैर से कुचल गया। साथ ही मेरे मन में एक अजीब घृणा का सा भाव आया और उसी रात मुझे एक स्वप्न आया। उस स्वप्न से मेरा जीवन बदल गया, मैं एक दूसरा आदमी बन गया। स्वप्न मे मैंने देखा कि मैं एक बहुत छोटा बच्चा हूँ, तीन या चार साल का, मेरे माता-पिता एक नदी पर पिकनिक के लिये ले गये हैं। मेरे पिता ने स्वयं स्नान किया और फिर मुझे भी पानी में डुबकी लगा दी। जब तीन-चार साल के बच्चे को डुबा देते हो तो उसके सामने एक अन्धकार फैल जाता है, थोड़ी देर के लिये आकस्मिक भय उत्पन्न हो जाता है, वही उसके दिमाग पर असर डाल देता है। यह एक बहुत साधारण घटना थी, जो मुझे याद भी थी। भला तीन साल का बच्चा क्या याद करेगा? पर वह घटना थी अंधकार से भय की, जो मेरे जीवन पर छाप छोड़ गयी। मुझे लगता था कि कोई मुझे दबा रहा है, और यह भय भी बीस साल की उम्र से शुरू हुआ।

क्या आप लोगों का भय, मानसिक बीमारियाँ, शारीरिक बीमारियाँ, मन का जंजाल, यह सब आपके जीवन की घटना नहीं है? क्या आप लोगों ने उसे खोलने की कोशिश की है? इसे खोलने का तरीका ध्यान योग है। ध्यान करने वाले लोगों! ध्यान दो मेरी बातों पर। ध्यान करते समय मन जितना भागे, भागने दो। जितना अच्छा ध्यान होगा उतना ज्यादा अवचेतन मन ऊपर आता जायेगा। जितना ही ज्यादा तुम्हारा सूक्ष्म शरीर व्यापक होगा उतना ही अच्छा होगा, क्योंकि उसी में तुम्हारे बचपन की घटनायें हैं। सारे-के-सारे अनुभव वहाँ रखे गये हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घटना एक फोटो की तरह होती है। आप जीवन से भाग नहीं सकते, चित्रगुप्त के लेख से बच नहीं सकते। अनुभव रोग का रूप लेकर आता है, माता-पिता का गलत व्यवहार रोग लेकर आता है। मनुष्य की शारीरिक बीमारियों, व्यवहार से प्राप्त बीमारियों को ठीक करने के लिये अन्दर खोजो। अन्दर जाने का मतलब होता है योग करो।

योग महान् संतों, त्यागियों या मुनियों के लिये नहीं, बल्कि उनके लिये है जो दु:खी हैं। ध्यान योग, मन्त्र योग, पद्मासन, सिद्धासन या प्रणवोच्चारण का अभ्यास आपके अन्दर छिपे हुये कर्मों के बीज के समुदाय को ऊपर लायेगा। मैं एक नहीं, हजार उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ। जैसे-जैसे अवचेतन मन व्यापक होगा, ये संस्कार बहिर्गत होंगे, व्यक्तित्व प्रस्फुटित होगा।

योग – एक सार्वभौमिक संस्कृति

स्वास्थ्य के लिए केवल वायरस या बैक्टीरिया को ही मत गिनो, मन और कर्म को भी साथ लेकर चलो। मन और कर्म के बिना तुम्हारा विज्ञान आधा है। मेरा आपसे एक निवेदन है। जब एक विदेशी संस्कृति हमारी बात सुनने को उत्सुक है तब तो इस योग के विषय में, जो आप ही की विरासत है, आपको अच्छी तरह सोचना चाहिए और उसे व्यवस्थाबद्ध करना चाहिए। योग को इतना व्यवस्थित करो जितना बाहर के देश कर रहे हैं। मैं इसे धर्म के रूप में आगे नहीं बढ़ाना चाहता, बल्कि इसे विज्ञान, संस्कृति एवं कला के रूप में रखना और विकसित करना है। आपके पास जो कुछ भी सुविधाएँ हैं और कल्पनायें हैं, उनसे योग के कार्य को आगे बढ़ाओ। विश्व में योग को आगे बढ़ाने में 1964 से जो भी कार्य किया गया उससे आज बहुत फर्क हो गया है। मैं अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी का आभारी हूँ। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था, 'स्वामी सत्यानन्द! मैं तो ऋषिकेश से बाहर नहीं जा सका, तुम बाहर जाओ और शेर की तरह दहाड़कर कह दो – धर्म, योग के कंट्रोल में रहेगा।'

बिहार योग विद्यालय एक छोटी-सी कुटिया है, पर वही कुटिया आप लोगों के योग का बीज है। मैं बिहार गया हूँ, क्योंकि मुझे बिहार में विश्वास है। वहाँ का आदमी जिस चीज को पकड़ लेगा, मरने के बाद भी उसे करेगा। भगवान बुद्ध की बात देखो, उनका काम मरने के बाद हुआ। भगवान महावीर को देखो, उनके मरने के बाद जैन धर्म फैला। वह धरती मजबूत है, इसीलिये मैं वहाँ गया हूँ। हमने वहाँ एक दीप जलाया है स्वामी शिवानन्द जी की स्मृति में। एक बार उन्होंने हमसे कहा था, 'यह दीपक सात समुन्दर पार धरती में जाना चाहिये।' आज राष्ट्रों में असुरक्षा है, अविश्वास है, भय है। उनके नागरिक भावनात्मक समस्याओं से, न्यूरोसिस से, सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित हैं। योग प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक समस्याओं से बचने में मदद कर सकता है और राष्ट्रों को बचा सकता है। इस योग में अपार शक्ति है।

एक विशाल व्यक्तित्व

श्रीमती अद्यावती सहाय, भागलपुर

किसी भी आध्यात्मिक महापुरुष को यदि हम सत्य शाश्वत आलोक में देखने की कोशिश करें तो हम पायेंगे कि उनका सम्पूर्ण जीवन असाधारण तत्त्वों से निर्मित हुआ है। शैशव से लेकर पूर्णता तक उनके जीवन हमारे मानसिक धरातल पर एक अमर छाप छोड़ जाते हैं। इस संसार में जो व्यक्ति पूर्णत: सत्य के आलोक में आ चुके हैं, वस्तुत: उनके शैशव में ही हम वैराग्य का अंकुर पाते हैं, जिसका पल्लवित रूप उनके जीवन के अग्रभाग में मुकुलित होता है। कबीर, तुलसी, दादू, मीरा आदि जैसे मध्ययुग के किसी भी महापुरुष के जीवन-दर्शन पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें शैशवकाल से ही अध्यात्म की पिपासा इतनी प्रबल हो उठी कि निखिल सृष्टि की कोई भी शक्ति उन्हें माया के बन्धन में नहीं बाँध सकी थी।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के जीवन को देखें तो उनके शैशव में ही वैराग्य का अंकुर पूर्णत: परिलक्षित होता है। अल्मोड़ा की शुभ्र प्रकृति की गोद में पल कर भी प्रकृति की माया इन्हें बाँध नहीं सकी।

एक चिन्तनशील व्यक्ति जब जीवन की विभीषिका को देख कर कराह उठता है, तब वह अध्यात्म की गोद में जा गिरता है। अध्यात्म उसे अपनी विश्रामदायिनी गोद में बिठाकर इस कोलाहलमय जगत् से दूर, बहुत दूर ले जाता है; परन्तु उसे पलायनवादी तथा निष्क्रिय नहीं बनाता, बल्कि उसकी चेतना को सत्य के क्षितिज में ले जाकर धुली-पुछी मानवता के आदर्श निर्माण के लिए सचेत करता है।

विद्यालय के कटघरे में ये परविद्या के अजस्र तत्त्व का दर्शन नहीं कर सके। इन विद्यालयों में लौकिकता का आभास मिला, जो वस्तुत: उनके व्यक्तित्व के प्रतिकूल थी। प्रकृति की सुषमा ने उन्हें एक भावुक कवि बनने के लिए अनुप्राणित किया। अत: उनके सिद्ध-योगी का रूप एक कवि से प्रारम्भ होता है। 'पल्लव' उपनाम रखकर एक कवि के रूप में सर्वप्रथम उन्होंने प्रकृति में असीम तत्त्व का आलोक खोजने का प्रयत्न किया। आगे चलकर इनका कवि रूप बहुत अधिक पल्लवित हुआ और ये कवि तक ही सीमित नहीं रहे। स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर इन्होंने प्रथम उस असीम तत्त्व की विशालता में अपने अस्तित्व को विलीन करने का प्रयत्न किया और इन्हें ही उन्होंने गुरु-रूप में पूजा। यहीं से इनके योगी जीवन का अभियान चला। आज ये शिवानन्दाश्रम में हिन्दी-संस्कृत विभाग और प्रकाशन मण्डल के अध्यक्ष तथा योग वेदान्त के सम्पादक हैं। हमारी पहली भेंट इनसे स्वामी जी के आश्रम में हुई। मैं स्वामी जी के पद कमलों के दर्शनार्थ

तथा गुरु-दीक्षा के लिए गई थी। वहीं स्वामी जी के पवित्र आश्रम में उनकी दिव्य शौर्य मूर्ति को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी, उनकी दिव्य मूर्ति को देखकर। ये अध्यात्मवाद के एक प्रबल महारथी हैं। आध्यात्मिकता ही इनका जीवन अमृत है। इनके प्रत्येक कार्य में अध्यात्म का साकार दर्शन होता है। ये योग साधना में लीन रहकर भी अध्यात्म के तृषित व्यक्तियों की तृष्णा को दूर करते हैं तथा अन्धकार के कलुषित वातावरण में से आकुल मानवों को ज्ञान के आलोक में लाकर उन्हें पराविद्या का तत्त्व बतलाते हैं। वे अपने विवेक, अन्तर्बोध तथा आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर इस सत्यता का निरूपण करते हैं। उन्होंने साधना द्वारा अपने आत्मदर्शन को संघटित किया है।

बालब्रह्मचारी योगी श्री सत्यानन्द जी महाराज के रोम-रोम में हमने उस असीम का दर्शन किया है, जिसका आलोक जीवन को मानव के स्तर से दूर ईश्वरत्व का स्वर्णिम रूप दे सकता है। आज विश्व को वस्तुत: ऐसे ही व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो अपने विशाल व्यक्तित्व से मानव जीवन को चिरन्तन सत्य का पावन पथ बता सकें। उनका यह कार्य चिर अभिनन्दनीय है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु बनावें, जिससे वे मानवों को नवीन पथ बतला सकें।

– स्वामी सत्यानन्द जी के 31वें जन्मदिन पर
प्रकाशित अभिनन्दन ग्रंथ से उद्धृत

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा,
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा।
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा,
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा॥

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मन का पुनर्संयोजन

मानव मस्तिष्क एक अत्यधिक विलक्षण चीज है जो कम्प्यूटर यंत्र के सदृश है। यह एक ऐसा जीवित कम्प्यूटर है जिसकी बनावट और पेचीदगी कल्पना से परे है। आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार इसमें दस से तेरह अरब न्यूरॉन्स हैं जो बाह्य जगत् एवं शरीर से प्राप्त संवादों-संवेगों का संचालन, विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन व प्रसारण करते हैं। शरीर के प्रत्येक अंग से संवेदी सूचानाओं के साथ-साथ प्रति क्षण ये ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हजारों-लाखों संवादों को प्राप्त कर उन पर कार्य करने में सक्षम हैं। याद रखें, शरीर के प्रत्येक वर्ग इंच का सम्बन्ध मस्तिष्क की तंत्रिकाओं से है।

इसके अलावा अवचेतन मन के क्षेत्र में असंख्य क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनसे हम अनभिज्ञ हैं। यदि हमें इन सबकी जानकारी होती तो हम सूचनाओं की बाढ़ में डूब जाते। इस परिस्थिति में यह आवश्यक है कि हमारी चेतना शरीर और इन्द्रिय संवेदनाओं की क्रियाओं से मुक्त होकर दूसरे कार्यों का सम्पादन कर सके।

मस्तिष्क का यंत्र कैसे कार्य कर रहा है, यह जानना आवश्यक है। हमारा मस्तिष्क आधुनिक कम्प्यूटर यंत्र की भाँति है। यदि कम्प्यूटर का संचालक किसी प्रश्न को हल करना चाहता है तो वह उसका उत्तर पाने में ज्यादा उत्सुक रहता है, न कि प्रश्न हल करने की क्रियाविधियों में। लेकिन यंत्र बिगड़ जाने पर यंत्र-चालक उसकी गतिविधियों को जानने का प्रयास करता है। जब मशीन में ही गड़बड़ी रहती है तो सही उत्तर पाने की कैसे आशा की जा सकती है? गड़बड़ी या तो संयोजन में होती है या यंत्र में।

हममें से अधिकतर लोग जिस कम्प्यूटर रूपी मस्तिष्क को लेकर चल रहे हैं उससे भ्रामक उत्तर ही प्राप्त होते हैं। वास्तव में कुछ अपवादों को छोड़कर मस्तिष्क में गड़बड़ी नहीं है, गड़बड़ी है उसके संयोजन में। दूसरे शब्दों में, अगर हम एक सार्थक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें अपने मस्तिष्क का पुनर्संयोजन करना होगा। गलत मानसिक संयोजन की आदत हमने जन्म से ही डाल ली है, जिसके फलस्वरूप हम जीवन में सुख-शान्ति की कमी झेल रहे हैं। मन को पुन: संयोजित करके हम एक ऐसे जीवन की देहरी पर पदार्पण करेंगे, जहाँ एक नयी उल्लास भरी सार्थकता होगी। उपयुक्त ढंग से संयोजित किया हुआ मन इस संसार को सच्चा स्वर्ग बना देगा। यदि मन की स्थिति विपरीत हुई तो जीवन नरक जैसा बन जायेगा।

हमारा मानसिक संयोजन ही हमारे दु:खों का कारण है। हम अपने अहं को पुष्ट करके आनन्द की खोज करते हैं। इस तरह से सुख खोजने का यह परिणाम होता है कि हमें धन की प्राप्ति, नयी कार खरीदने, खान-पान, मान-मर्यादा और प्रभुता स्थापित करने में सुख की प्राप्ति दिखायी देती है, जो वास्तव में क्षणिक है।

एक वाक्य में कहें तो हम अपने अहं के पोषण में ही सुख का अनुभव प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार के प्रयास के फलस्वरूप हम अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दूसरे लोगों का उपयोग करने को बाध्य हो जाते हैं। यदि वे हमारे रास्ते में आते हैं तो हम हर सम्भव प्रयास कर उन्हें अपने रास्ते से हटाने का प्रयास करते हैं, जिसके फलस्वरूप घृणा, ईर्ष्या, चिन्ता, तनाव और भय आदि से वातावरण दूषित हो जाता है। आनन्द की खोज के इस तरीके का परिणाम विपरीत ही होता है। अगर हमें इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं होती तो हमारे मन में कई तरह के मानसिक तनाव, अशान्ति और दु:ख व्याप्त हो जाते हैं।

ये सभी वस्तुएँ हमें सुख नहीं दे पाती हैं, इसके बावजूद हम इन चीजों के पीछे क्यों भाग रहे हैं? इसका उत्तर यही है कि हमारे मन का संयोजन ही ऐसा है कि हम इन क्षणिक चीजों में सुख खोजने लगते हैं। आजकल जैसे कम्प्यूटर यंत्र बिगड़ जाने पर उसे सुधार सकते हैं, उसी प्रकार हम अपने मन को सुधारने के लिये उसका पुनर्संयोजन कर सकते हैं। आवश्यक प्रयास करने से यह संभव है। इस नये संयोजन के परिणामस्वरूप हम अपने वातावरण के प्रति नवीन तथा बेहतर प्रतिक्रियायें व्यक्त करेंगे और तब हमारा आनन्द अहंकार की तुष्टि और वासनाओं पर निर्भर नहीं रहेगा।

यदि हम जीवन में अपने आसपास के वातावरण तथा लोगों के साथ निरन्तर संघर्षरत रहें तो ध्यान सर्वथा असंभव है। अगर हम जीवन में संघर्षरत रहने की अपेक्षा जीवन-धारा में बह चलें तो ध्यान स्वत: लगा करेगा। यदि हम अपने मन

का पुनर्संयोजन कर सकें तो हम वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं, तब बिना प्रयास के ध्यान स्वत: लग जाएगा। इससे हमारी चेतना विस्तृत होगी। आनन्द इसी उन्मुक्त चेतना की देन है। संसार को खींच-तान कर अपनी इच्छा के अनुरूप बनाने से आनन्द नहीं मिलेगा। आनन्द अपने मन पर निर्भर करता है, न कि संसार को अपनी इच्छाओं के अनुरूप बनाने पर। अपने मन के विचारों को नये ढंग से संयोजित करने से हम चिरस्थायी आनन्द पा सकते हैं जो हमारी आत्मा के अंदर स्वयं विद्यमान है।

वर्तमान जीवन की हमारी मान्यताओं और धारणाओं, रुचि-अरुचि, राग-द्वेष, रह-रह कर उठने वाली ईर्ष्या आदि के द्वारा संसार की जो व्याख्या की जाती है, वह बिल्कुल विकृत और निराधार है। हमारा मन उन्हीं सूचनाओं और संवेदनाओं को ग्रहण करता है जो उसकी पूर्व-निश्चित धारणाओं और संयोजन के अनुरूप हुआ करते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि हम ऐसा अनुभव करें कि संसार में हर कोई हमसे घृणा का भाव रखता है तब हमारा मन उसी प्रकार की सूचनाओं को तेजी से ग्रहण करेगा जो घृणा को बढ़ाने वाली होंगी। तब मन दूसरे प्रकार के अनुभवों को दबा देगा। यदि हम समझें कि संसार में हर कोई हमें प्यार करता है तो हमारा मन बाह्य जगत् की सारी घटनाओं को प्रेम के ही रंग में रंगा हुआ देखेगा। ऐसे अनेक उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि मन बाह्य घटनाओं को अपने संयोजन के अनुरूप सिद्ध करने में बहुत पटु है। हम भ्रम के जाल में अधिकाधिक उलझते चले जाते हैं। बाहरी दुनिया का यथार्थ स्वरूप हम इसी मन के कारण, अपनी कामनाओं के कारण नहीं देख पाते।

याद रखें, हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि कामनायें एवं इच्छाएँ बुरी होती हैं। परन्तु एक सीमा के बाद आध्यात्मिकता के विकास और ध्यान के अनुभवों की प्राप्ति में वे बाधक अवश्य हैं। अवर्णनीय आनन्द और उच्चतर चेतना हमारी प्रतीक्षा कर रही है। हमें मात्र अपने मन का पुनर्संयोजन करना है और ध्यान में रत हो जाना है।

इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य सबसे पहली बात यह है कि आप अपने जीवन को बदलने की चेष्टा न करें। सिर्फ बाह्य जगत् के साथ अपने सम्बन्धों को सुधारते हुए अपने मन का पुनर्संयोजन करें।

दूसरी बात यह है कि आप इस बात का स्वयं अनुभव करें कि संसार में सच्चा सुख पाने के पीछे दौड़ना व्यर्थ है। अगर इतनी भाग-दौड़, इतनी निराशाओं के बाद भी हम यह बात समझ न पाये तो कब समझेंगे? आप अपने मन को बदलने में तभी सफल होंगे जब आप समझ लेंगे कि बाह्य जगत् में सुख एवं शान्ति मिलने वाली नहीं है। जिन लोगों ने अपना सारा जीवन सांसारिक सुख पाने के लिए भाग-दौड़ में बिता दिया है, वे भी अपनी इच्छित वस्तु नहीं पा सके। अन्तत: उन्हें

एक सनक-सी हो जाती है और वे यह मानने लग जाते हैं कि स्थायी आनन्द और शान्ति केवल कपोल-कल्पना है।

याद करने योग्य तीसरी बात यह है कि मन का एक नया कार्यक्रम बनाना चाहिये। एक कहावत है कि जैसा हम सोचते हैं, वैसा ही हम बनते हैं। हमारी वर्तमान मन:स्थिति हमारे पुराने विचारों पर आधारित होती है। मन मोम की तरह है, जिस प्रकार का ठप्पा इसके ऊपर लगाते हैं, यह वैसा ही बन जाता है। अगर हम इसे नये साँचे के अनुसार ढालने की कोशिश करें, नये ढंग से सोचना प्रारम्भ करें तो निश्चित ही हमारा मन अपने को पुनर्संयोजित कर लेगा।

एक उदाहरण द्वारा समझें कि किस प्रकार मन संयोजित होता है और व्यक्ति किस प्रकार उसकी बात मानने के लिए विवश होता है। मान लीजिये, एक परिवार का अभिभावक क्रूर प्रकृति का है। वह वही करता है जो उसकी इच्छा होती है। सभी को अपने शासन में दबा कर रखता है। उस परिवार का एक बच्चा बाहर जाकर अपने मित्रों के साथ खेलना चाहता है, पर उसका पिता उसे रोकता है। उस बच्चे का मन अपने को संयोजित करता है। उसकी धारणा बन जाती है कि संसार में शक्ति और प्रभुत्व ही सब कुछ है। जब वह बड़ा हो जाता है, वह इसी के अनुसार सुख प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। हमारी सभी बाह्य इच्छाओं के मूल में ऐसी ही बातें रहा करती हैं। लेकिन इसके साथ ही हममें यह भी क्षमता रहती है कि हम पुराने संयोजनों को हटाकर मन को पुनर्संयोजित करें, जिससे जीवन में सामंजस्य स्थापित हो सके और हमारी चेतना का विस्तार तथा विकास हो सके। तब हम अपने इस परिवर्तित मन से जागृत एवं विस्तृत चेतना के आधार पर एक सकारात्मक तथा रचनात्मक भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। शनै: शनै: हम अपने अन्दर छिपे हुए सत्य और सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त कर सकेंगे।

भक्त के लक्षण

गीता के बारहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने भक्ति के बारे में समझाया है। बच्चे को जैसे पहले वर्णमाला सिखलाई जाती है और बाल विहार में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें भाषा के पहले वर्ण परिचय कराया जाता है, उसके बाद उन्हें शब्द रचना और वाक्य बनाना सिखलाया जाता है, उसी तरह भक्ति के बारे में भी समझना चाहिए। भक्ति का मतलब कुछ लोग यह लगाते हैं कि माला जपना, पूजा-पाठ करना, कथा-कीर्तन करना, तीर्थ जाना, मंदिर जाना ही भक्ति है। असल में यह गलत अवधारणा है, यद्यपि यह भी आरम्भ में जरूरी है।

मैं यह नहीं कहता कि ऐसा नहीं करना चाहिए। यह भी भक्ति की एक अवस्था है। एक सैनिक को आरम्भ में यूनिफार्म पहनना सिखलाते हैं, जूता पहनना सिखलाते हैं और फिर बाद में हाथ में बन्दूक पकड़ा देते हैं तथा उसका उपयोग करना सिखलाते हैं और जब वह यह सब सीख जाता है, तब लड़ने के लायक बनता है और समय आने पर लड़ाई के मैदान या युद्ध क्षेत्र में होशियारी से लड़ता है। जिस तरह से सैनिक के लिए यह शिक्षा है, उसी तरह भक्त को भगवान का अनुभव हो, यह भी बहुत जरूरी है। उसी के लिए अनेक बातें बताई गई हैं। पूजा-पाठ करना, तीर्थयात्रा करना, आदि सब उसी भगवान को पाने के लिए ट्रेनिंग है। परन्तु दु:ख इस बात का है कि जिनको भी ये बातें सिखाई जाती हैं, वे इनसे ऐसे चिपक जाते हैं कि मरने के दिन तक नहीं छोड़ते। यह भक्त का बहुत बड़ा अवगुण रहता है।

भक्त का दूसरा अवगुण यह रहता है कि सिवाय अपने, वे बाकी सभी को छोटा समझते हैं। यह दोष प्राय: सभी भक्तों में होता है। इसलिए कितना भी पूजा-पाठ करने पर उनको भगवान का अनुभव नहीं होता। उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती और न उन्हें कभी ज्ञान प्राप्त होता है। उन्हें कुछ भी नहीं मिलता। जब आप भगवान की भक्ति करते हैं, तो आपको शान्ति मिलनी चाहिए, आनन्द मिलना चाहिए, ज्ञान होना चाहिए, विश्वास और श्रद्धा बढ़नी चाहिए, लेकिन यह सब नहीं मिलता। क्यों?

जिस तरह ब्रांच लाईन की गाड़ी चलकर फिर वापस अपने डेरे पर आती है, उसी तरह भक्त पूजा-पाठ में निमग्न रहते हैं। कागज के चित्र की पूजा करते हैं, लेकिन इससे आत्मा का विकास नहीं होता। क्यों? यह सब इसलिए कि जब तक भक्ति के रहस्य को भक्त नहीं समझता, तब तक जन्म-जन्मान्तरों तक पूजा-पाठ करने पर भी कुछ नहीं मिलता। इन दोषों को दूर करना बहुत जरूरी है। इसे हम उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं।

मेरा एक मित्र है जो बहुत अच्छा प्रोफेसर है। उसकी स्त्री एक बार अयोध्या गई और उसने वहाँ एक गुरु बनाया। बस दिमाग खराब कर दिया। घर आई तो हर

चीज को धोने लगी। लकड़ी को धोने लगी, धोबी के कपड़े को धोने लगी, यहाँ तक कि पूरे सामान को भी धोने लगी। अब आप समझ सकते हैं कि उसने घर के लोगों को कितना परेशान किया होगा। वह प्रोफेसर मेरे पास आया। अब आप ही लोग सोचें कि क्या यही लक्षण है भक्ति का? क्या भक्ति फर्क सिखलाती है। अगर भक्ति फर्क सिखलाती है, तो वह भक्ति नहीं है। इससे तो अच्छा है कि भक्त बनना ही नहीं चाहिए। जो अपनी आत्मा और परमात्मा में फर्क समझता है, जो फर्क देखता है, वह भक्त कैसा?

गीता के बारहवें अध्याय के उन आठ श्लोकों को पढ़िये जिनमें भक्त के लक्षण बताए गए हैं। मान लीजिये आप बम्बई गए। आपसे किसी ने पूछा कि मैं मुंगेर जाना चाहता हूँ तो आप केवल यह न बताकर कि कौन-सी ट्रेन मुंगेर जाती है, थोड़ा-सा रास्ता, थोड़ी-सी निशानियाँ भी उसे बताएँगे, जिससे उसे मार्ग में कोई कठिनाई न हो। इसी तरह भक्त को पहचानने के लिए भी कि यह भक्त है या नहीं, उसका लक्षण होता है। कैसे कहें कि यह भक्त है? इसी का उत्तर गीता के बारहवें अध्याय के आखिरी श्लोकों में बताया गया है। इन श्लोकों में भगवान ने साफ-साफ कहा है कि मनुष्य चाहे कितना ही पूजा-पाठ करे, तीर्थ करे, वह तब तक भक्त नहीं कहलाता, जब तक कि उसमें मानवता के प्रति, पशुओं के प्रति और दुनिया में जितनी भी चीजें भगवान ने बनाई हैं, उनके प्रति प्रेम नहीं होता, सम-भाव नहीं होता। भक्त का मतलब यह नहीं होता कि गाय को तो माने, लेकिन कुत्ते और मुर्गी को नहीं। यह भेद क्यों? गाय क्या कुत्ते से कम कचरा खाती है? ऐसे लोग अपने को भक्त कहलाते हैं। भक्त का मतलब होता है भगवान का भक्त। भगवान की बनाई हुई जितनी भी चीजें हैं, उन सबके प्रति समभाव रहे, उसे ही कहते हैं भक्त।

यह भी सत्य है कि जो भगवान की भक्ति करते हैं, उन्हें कुछ काल तक पूजा-पाठ करके फिर छोड़ देना चाहिए और मनुष्य जाति के सामूहिक उपकार हेतु लगना चाहिए। इसी को ही त्याग और संन्यास कहते हैं। बिना त्याग के कोई भक्त नहीं बन सकता। जो बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनते हैं, वे भी भक्त बन सकते हैं। कपड़े भक्ति के लिए बाधक नहीं हैं। इन सब चीजों से भक्ति का कोई मतलब नहीं रहता। बाहरी देशों के लोग मांसाहारी भी होते हैं, पैन्ट-कोट भी पहनते हैं, चमड़े के जूते भी पहनते हैं, उन लोगों का रहन-सहन बहुत अच्छा होता है और वे भक्त भी होते हैं। भक्त में दया होनी चाहिए, अपने रिश्तेदारों के प्रति ही नहीं, बल्कि उनके प्रति भी, जिनको हम नहीं जानते। दया और ममता में बड़ा अन्तर है। यदि आप अपने बेटे पर दया करते हैं, तो वह दया नहीं हुई, उसे तो ममता कहते हैं। पर यदि आप किसी पराये के प्रति दया करते हैं, तो वह दया मानी जाती है। दया का मतलब होता है दूसरों के प्रति अपने मन में कोमल भाव रखना। जो पतित हैं, दु:खी हैं, कम पढ़े-लिखे हैं, जिनको समाज नीच समझता है, जो कमजोर हैं, उन्हीं

की मदद करनी चाहिए। कोमल भाव रहे तो दया है। अगर सिंधी को सिंधियों के प्रति, मराठी को मराठियों के प्रति, मारवाड़ी को मारवाड़ियों के प्रति कोमल भाव है तो इसे दया नहीं, पक्षपात कहते हैं।

भक्त का मुख्य लक्षण दया और करुणा होता है। करुणा का मतलब होता है दु:खी को देखकर उसके प्रति अपने मन में दु:ख हो और यह विचार आए कि इसके दु:ख को मैं कैसे दूर करूँ, इसकी मैं कैसे मदद करूँ। इस भाव को ही करुणा कहते हैं। जब मनुष्य के मन में नि:स्वार्थ प्रेम होता है, तभी दया आती है, तभी करुणा भी होती है, तभी हृदय कोमल बनता है और तभी उसको भक्त कहते हैं। भक्त का हृदय कोमल होना चाहिए। कर्मयोगी का हाथ मजबूत होना चाहिए, राजयोगी का मन मजबूत होना चाहिए और ज्ञानयोगी का दिमाग विशाल होना चाहिए।

लेकिन आजकल हम देखते हैं कि सब उल्टा हो रहा है। भक्त का मन कठोर हो रहा है, कर्मयोगी का हाथ कमजोर हो रहा है, राजयोगी का मन कमजोर हो रहा है और ज्ञानयोगी का दिमाग संकुचित हो रहा है। आजकल भक्त लोग प्राय: क्रूर होते हैं। वे पूजा-पाठ तो करते हैं, मगर पूजा-पाठ करते हुए भी उनके हृदय में कोमलता नहीं रहती। यदि वे कोई धंधा करते हैं, तो मौका मिलने पर जेब भी काट लेते हैं।

भक्त कौन है, इसको जानने के लिए गीता के बारहवें अध्याय के श्लोकों को अच्छी तरह से पढ़ना चाहिए। भक्त को किसी से भी द्वेष नहीं करना चाहिए। सभी प्राणियों को अपना मित्र समझना चाहिए। आपके मन में इतनी कोमलता होनी

चाहिए कि आपको देखते ही साँप का जहर ठण्ढा हो जाए। वह भी आपके हाथ में आ जाए। भक्त का हृदय इतना कोमल होना चाहिए जो सबको मित्र बना ले।

एक राजा था जिसका नाम था प्रसन्नजीत। उसी के नगर में महात्मा बुद्ध रहते थे। उसी शहर में एक डाकू भी रहता था। वह डाकू बड़ा ही मजबूत था। सब लोग उससे डरते थे। राजा भी उससे डरता था। एक दिन राजा को विचार आया कि उस डाकू को पकड़ने का या सुधारने का एक ही रास्ता है और वह है भगवान बुद्ध का द्वार। तब राजा ने उनसे प्रार्थना की, इस डाकू से सारा राज्य त्रस्त हो गया है, आप अपने आत्मबल से उसको वश में लाएँ।

एक बार महात्मा बुद्ध उस जंगल से जा रहे थे, जिसमें वह डाकू रहता था। डाकू ने उनको देखा तो कड़क कर कहा, 'ए महात्मा, रुक जाओ।' बुद्ध ने जवाब दिया, 'हाँ, रुकता हूँ।' और ऐसा कहकर वे फिर आगे चलने लगे। जब डाकू ने उन्हें चलते देखा तो गुस्से में आकर कहा, 'आप जानते हैं मैं कौन हूँ? मैंने आपसे रुकने के लिए कहा, आप रुकते क्यों नहीं?' तब उन्होंने कोमलता से कहा, 'मैं तो पहले से ही रुका हुआ हूँ, आप चल रहे हैं।' उनका मतलब यह था कि मेरा मन तो एकाग्र है, शान्त है, आपका ही मन चंचल है, इसलिए आप ही चल रहे हैं। इस तरह उन्होंने अपनी कोमल वाणी और ज्ञान के द्वारा उस डाकू के मन को ही बदल दिया।

एक दूसरा उदाहरण है। संघमित्रा नाम की बहुत बड़ी धर्मप्रचारिका थी। एक बार मुसलमानों के देश में वह ज्ञान देने गई। उस समय कुछ लोगों के मन में थोड़ी-सी गलतफहमी हो गई कि वह अपने धर्म का प्रचार करके उनके धर्म का नाश करने आई है। उन्होंने एक सभा की और निर्णय लिया कि संघमित्रा को मार ही देना चाहिए, न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। यह काम एक आदमी को दिया गया। एक दिन वह संघमित्रा को मारने के लिए आधी रात में संघमित्रा के डेरे पर गया। उसने देखा कि संघमित्रा वहाँ नहीं थी। उसे खोजने निकला तो उसे दूर से कुछ प्रकाश दिखाई दिया। देखा कि कुछ आग जल रही है। वह आगे बढ़ा तो उसे किसी मनुष्य की परछाई दिखाई दी। वह और आगे बढ़ा और देखता ही रह गया, 'अरे! यह तो संघमित्रा है।' वह एक कुत्ते की सेवा कर रही थी, जिसका शरीर फोड़े से भरा हुआ था। उस कुत्ते के आगे वह पीला वस्त्र पहने उसकी मरहम-पट्टी कर रही थी। कुत्ता बहुत चिल्ला रहा था और हाथ-पैर पटककर उसकी ओर काटने को दौड़ रहा था, पर संघमित्रा इसकी परवाह किये बगैर कोमल भाव से मरहम लगा रही थी और उसके दु:ख से द्रवित हो रही थी। उसकी कोमलता देखकर कुत्ता भी चुप हो जाता था।

यह सब देखकर उस आदमी का मन कोमल हो गया और वह संघमित्रा के चरणों में झुक गया। उसने संघमित्रा को बताया कि मैं तो आपको मारने आया था, लेकिन वास्तव में यह कुत्ता मेरा ही है। पहले यह कुत्ता बहुत सुन्दर था, लेकिन एक बार उसको बहुत खराब रोग हो गया। इसी से उसने कुत्ते को निकाल दिया

था। बड़े-बड़े हकीमों ने इस कुत्ते की बहुत चिकित्सा की, पर अंत में सभी ने कहा कि इसकी चिकित्सा नहीं हो सकेगी, क्योंकि रोग असाध्य था। इसे रखने से दूसरे भी बीमार हो जाएँगे। इसीलिए इस कुत्ते को लोगों ने जंगल में छोड़ दिया था। कुत्ता अपनी पुरानी आदत के कारण एक बार अपने मालिक के पास गया भी, पर उसके मालिक ने उसे बहुत मारा, जिससे उसका रोग और भी बढ़ गया।

इससे पता चलता है कि भक्त का भाव कितना ऊँचा होता है। भक्त तो जानवरों से, पक्षियों से, भगवान की बनाई सभी वस्तुओं से प्रेम करते हैं। यही भक्तों और सन्तों का रहस्य है। सन्तों की करनी ही ऐसी होती है। वे कभी किसी प्राणी से घृणा नहीं करते। वे एक ही दृष्टिकोण से सबको देखते हैं।

भक्त को सदा सन्तोषी और आत्मनिग्रही होना चाहिए। आत्म-सम्पन्न भक्ति बड़ी कठिन होती है। यह किसान के खेत की तरह है। अगर वह खेत को नहीं देखेगा, घास नहीं काटेगा, तो घास बड़ी होती जाएगी और वह खेती नहीं कर सकेगा। इसी तरह भक्त को भी पहले मन में आत्म-चिन्तन करना चाहिए। बिना आत्म-चिन्तन के आत्मज्ञान नहीं हो सकता। आरम्भ में कुछ समय तक पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन तथा शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद, इन सबको छोड़कर आत्म-चिन्तन करना चाहिए। अपनी बुराइयों के प्रति कठोर होना चाहिए। सदा अपनी बुराइयों को और दूसरों की अच्छाई को देखने की कोशिश करनी चाहिए। जिस तरह किसान के घास नहीं काटने से घास बढ़ती जाएगी, उसी तरह मन की बुराइयाँ न देखने से बुराइयाँ बढ़ती जाएँगी। दूसरों की अच्छाई और अपनी बुराई देखने से दूसरों के अवगुण नहीं दिखते और उनके गुणों से अपनी भलाई होती है।

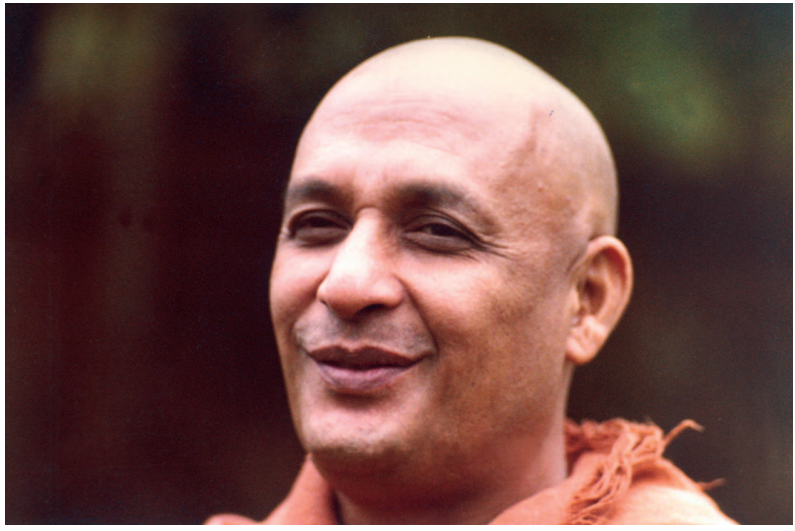

सुख और दु:ख में सन्तुलन

सुख और दु:ख में सन्तुलित रहने के लिए पहले सुख और दु:ख के अन्तर को जानना होगा। जो इसे जानता है, उसके लिए दु:ख एक शिक्षा है और सुख एक परीक्षा। दु:ख में आदमी बहुत कुछ सीखता है, मगर दु:ख को कोई पसन्द नहीं करता। सभी सुख चाहते हैं, पर सुख मिल जाने पर अपने आपको संभाल नहीं पाते। समृद्धि, यश, पद एवं प्रतिष्ठा – सब आदमी को कमजोर बना देते हैं। इसलिए जब तुम समृद्ध और शक्तिशाली बनते हो तब तुम्हें कठोर जीवन बिताना चाहिए। जो व्यक्ति सम्पन्न हो, जिसके हाथ में शक्ति हो, उसे अपनी अमीरी और ताकत को भुनाने या उनके उपभोग में लिप्त होने की आकांक्षा को त्याग देना चाहिए।

ईश्वर ने स्वर्ण में सुगंध नहीं डाली, गन्ने में फल नहीं लगाये, चन्दन वृक्ष में फूल नहीं दिये, विद्वान् को सम्पत्ति नहीं दी और राजा को दीर्घायु नही बनाया। भगवान के इस कार्य में एक रहस्य है। ये सभी वैसे ही पर्याप्त यशस्वी और उपयोगी हैं। इससे अधिक भाग्यशाली बनकर इनका अभिमान बढ़ जाता और वही इनके पतन का कारण बनता। इसलिए ऐश्वर्य और सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी विनयशील रहना चाहिये।

भगवान हमें जो देता है, क्यों देता है? एक आदमी को चाहिए ही क्या? खाने को दो रोटी, रहने को एक छोटा-सा मकान। भगवान हमें समृद्धि इसलिए देता है कि हम उसको दूसरों में बाँट सकें। वह हमको अपना माध्यम बनाता है। जब वह हमें एक करोड़ रुपया देता है, तब हम कहते हैं कि 'भगवान ही जाने, क्यों देता है।

हमें तो उसकी जरूरत नहीं रहती, क्या करें उसको खा नहीं सकते।' वह मुझे एक करोड़ रुपये देता है और कहता कि इसमें से अपनी तनख्वाह निकाल लो और बाकी जरूरतमंदों में बाँट दो। वह मुझे इस धन का ट्रस्टी बना देता है, माध्यम बना देता है। अपने ऊपर खर्चा भी करना चाहोगे तो कितना करोगे? खाने पर, कपड़ों पर, अन्य आवश्यकताओं पर लाख, दस लाख। बचे हुए नब्बे लाख का क्या करोगे? भगवान बोलते हैं कि मैं सबके लिए दे रहा हूँ और हम सोचने लगते हैं कि सारा मेरे लिए है। हम तो ट्रस्टी हैं, सारे ऐश्वर्य के, हर अधिकार के। हमें अपनी बुद्धि का, अपने ऐश्वर्य का, अपने अधिकारों का उपयोग जनहित में करना चाहिए।

जिन लोगों को तुम 'दूसरा' समझते हो, उनके लिए दया, सहानुभूति एवं करुणा का अनुभव करो। 'दूसरे' से मेरा मतलब है, जिन्हें तुम अपना नहीं समझते। तुम अपने पुत्र को दूसरा नहीं कह सकते, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे पिता, वे सब तुम्हारे हैं। 'मेरे पिता', 'मेरी माँ', 'मेरी पत्नी', 'मेरा बच्चा' सब कुछ मेरा ही मेरा। जिनको तुम अपना न कह सको उन्हीं के साथ अपना जीवन बाँटने का प्रयास करो, तभी तुम्हें एक उच्चतर अवस्था की झलक मिल सकेगी। यदि तुम्हारा मन 'मेरा-मेरा' में ही उलझा रहेगा, तो बहुत संकीर्ण दायरे में सीमित होकर रह जायेगा। तुम्हारी चेतना भी बहुत सीमित दायरे में सिमटकर रह जायेगी। महाभारत के अनुसार 'यह मेरा है, वह तुम्हारा है, जिनकी बुद्धि इसी प्रकार विचारती है, वे चेतना के निम्न स्तर पर रहते हैं।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

जो लोग बड़े दिलवाले होते हैं, जिनकी चेतना का विस्तार विशाल होता है, उनके लिए सम्पूर्ण मानवता ही एक परिवार की भाँति हो जाती है, *वसुधैव कुटुम्बकम्*। पूरा विश्व एक परिवार है, एक समुदाय नहीं, एक परिवार। तुम्हारी सम्पन्नता जिसका तुम आनन्द लूटते हो, जिन अधिकारों का तुम प्रयोग करते हो, तुम्हारे पास जो प्रेम, दया, करुणा है, सबके बीच में बाँट दो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो वही शक्ति तुम्हारे लिए समस्याएँ खड़ी कर देगी। सम्पन्नता एक नासूर बन जायेगी। अमीर कहलाने वाले लोग बहुत दुःखी हैं, परेशान हैं। जिनके पास सत्ता है, शक्ति है, वे भी दुःखी रहते हैं। बिना नींद की गोली खाये सो नहीं सकते हैं।

दान, भोग और नाश, धन की यही तीन गतियाँ हैं। उत्तम वृत्ति के लोग संचित धन का कल्याण-कार्यों में दान करते हैं, मध्यम वृत्तिवाले उससे अपनी सुख-समृद्धि के साधन बढ़ाते हैं, परन्तु जो न दान करते हैं और न भोग करते हैं, ऐसे मनुष्यों का धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अपना दुःख अकेले भोगो पर अपना सुख बाँटो। लोग अपना दुःख बाँटते हैं और सुख अकेले भोगते हैं, कमरे में ताला लगाकर, अन्दर-ही-अन्दर। अपना सुख बाँटना और अपना दुःख अकेले भोगना सीखो।

आत्मा से तादात्म्य

हमें अपने आप से तथा अपने परिवेश के साथ पुन: तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। यह प्रक्रिया आवश्यक है। हमारे जीवन में दु:ख-शोक तभी आता है जब हम अपने आपको अपने शरीर, अपने मन, अपने काम-धन्धे या जीवन के अन्य कार्यों के साथ जोड़ लेते हैं। हम क्षणभंगुर पदार्थों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जबकि हमें जीवन के सनातन और अपरिवर्तनीय तत्त्वों के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में हमें अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए, जो निर्विकार और शाश्वत है। जैसे ही हम अपने जीवन की सांसारिक भूमिकाओं से और अपने शारीरिक एवं मानसिक प्रसंगों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर उन्हें इस रूप में स्वीकार कर लेंगे कि वे हमारी आत्म-सत्ता के बाह्य प्रकट रूप हैं, ध्यान हमारे लिए एक सहज प्रक्रिया बन जाएगी। जीवन के बाह्य पक्षों, जैसे, मन और शरीर आदि से यदि थोड़ा भी अनासक्त हो जाएँगे, तो इस तटस्थता के कारण ध्यानजन्य अनुभवों में वृद्धि होने लगेगी, क्योंकि शारीरिक उपद्रव, मानसिक उद्वेलन एवं भावनात्मक उथल-पुथल, ध्यान-मार्ग के बाधक तत्त्व हैं और इनके प्रति वैराग्य-भाव का उदय होते ही ध्यान की गहनता में वृद्धि होने लग जाती है। हमारे व्यक्तित्व के समस्त शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक पक्षों के शिथिल और शान्त होते ही ध्यान एक सरल, स्वाभाविक और सहज क्रिया बन जाती है।

यह एक विचित्र बात है कि आप किसी से उसका परिचय पूछें तो वह कहेगा, 'मैं चिकित्सक हूँ' अथवा 'मैं इन्जीनियर हूँ', अथवा 'मैं गृहिणी हूँ', अथवा 'मैं फुटबॉल का खिलाड़ी हूँ'। वह सांसारिक दृष्टि से जीवन में अपनी मुख्य भूमिका को ध्यान में रखकर उत्तर देगा। लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तर देंगे। कोई स्त्री कह सकती है कि मैं माँ हूँ, पत्नी हूँ और दिन में टंकण का कार्य करती हूँ। किन्तु उनकी दैनिक चर्या का परिचय उनके व्यक्तित्व का सच्चा परिचय नहीं है। यह उनके कार्यों का परिचय है, स्वयं उनका नहीं।

यहाँ हम एक उदाहरण द्वारा समझाते हैं कि अपनी सांसारिक भूमिका के साथ तादात्म्य स्थापित करने पर किस प्रकार व्यक्ति का जीवन दु:खमय हो जाता है। एक अभिनेता का उदाहरण लें। वह अपने को अभिनेता के रूप में देखता है, एक ऐसा अभिनेता जिसका सुन्दर-सुडौल शरीर है, आकर्षक मुखमण्डल है और प्रभावशाली वाणी है। वह अपने आकर्षण को बनाए रखने के लिए सदा जागरूक रहता है। इसके बावजूद ज्यों-ज्यों समय बीतता जाएगा, वह दर्पण के सम्मुख खड़ा होकर देखेगा कि उसका सुन्दर, सुगठित शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है, उसके

मुख की कान्ति घटती जा रही है, उसकी आवाज का जादू अपना असर खोता जा रहा है, उसके शारीरिक ओज में भी ह्रास हो रहा है। उसे यह समझने में थोड़ी देर जरूर लगेगी कि वह तीव्र गति से बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा है। वह प्रतिदिन घण्टों दर्पण के पास खड़ा होकर अपनी रौनक उतरते देखेगा तो उसका मन अवसाद से भर जाएगा। वह दु:खी हो जाएगा, क्योंकि स्वयं के बारे में उसकी कल्पित छवि निस्तेज होती दिखेगी। अनित्य एवं क्षणभंगुर जग-प्रपंच को चिरस्थायी एवं नित्य समझ बैठने की भूल की भारी कीमत उस अभिनेता को चुकानी पड़ेगी। क्षणिक चकाचौंध भरी जिन्दगी के साथ आत्मीय-सम्बन्ध बना लेने और उसे अपना सच्चा

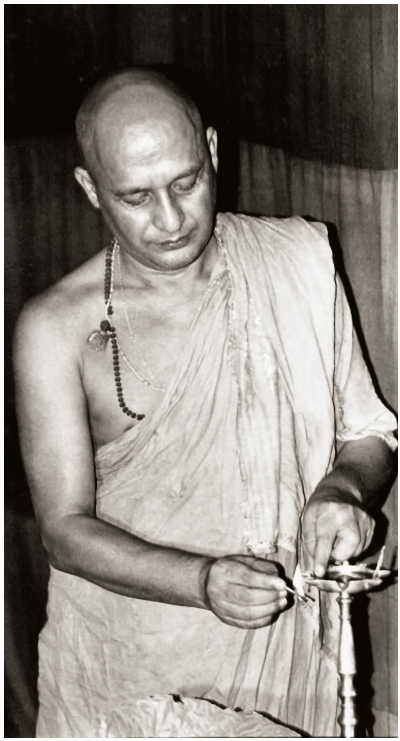

परिचय मान लेने के कारण कई लोगों के साथ, विशेषकर फिल्म-जगत् के सितारों के साथ दारुण त्रासदियाँ घटित हुई हैं और कई लोगों ने आत्महत्या तक कर ली है।

माँ के साथ भी यही होता है। उसका अपने बच्चे के साथ एकात्म होना ही उसे वियोग से उत्पन्न दु:ख झेलने के लिये विवश करता है। यही बात किसी डॉक्टर, वकील, कलाकार या गृहिणी पर भी लागू होती है। जीवन के अस्थायी कार्यों के साथ इनका गहरा तादात्म्य होता है। इनके साथ एकात्म भावना रखने के कारण ही इनकी अनुपस्थिति में दु:ख और भावनात्मक असंतुलन होने लगता है।

शरीर, मन और भावना के साथ हमारा तादात्म्य इतना प्रबल एवं विस्तृत है कि हम इसे सहज रूप में सत्य मान लेते हैं। जब कोई कहता है कि मैं प्यासा हूँ तो यह बात बिना इसके वास्तविक अर्थ पर ध्यान दिए हुए कही जाती है। इसमें यह नहीं सोचा जाता कि 'मैं' से तात्पर्य आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने से है। 'मैं' का अर्थ क्षणिक शरीर ही समझा जाता है, जबकि कहना यह चाहिए कि 'मेरा शरीर प्यासा है'। इस तरह यह अर्थ स्पष्ट हो जायेगा कि यह शरीर हमारी आत्मा की भौतिक तथा क्षणभंगुर अभिवव्यक्ति मात्र है।

यही स्थिति हमारे विचारों और भावनाओं के साथ भी है। हम कहते हैं, 'मैं क्रुद्ध हूँ' अथवा 'मैं अवसादग्रस्त हूँ', परन्तु यह तो हमारे मस्तिष्क के संवेगात्मक पक्ष की एक क्रिया मात्र है। ये सब अस्थायी स्थितियाँ हैं जो क्षण-क्षण रंग बदलती हैं, एवं मिटती-बनती रहती हैं। अभी किसी के साथ मित्रता की भावना है, तो दूसरे ही क्षण शत्रुता की भावना पैदा हो जायेगी। यद्यपि ये स्थायी चीजें नहीं हैं, तथापि हम अपनी आदत के मजबूर इनके साथ तादात्म्य की भावना स्थापित करते हैं। हम कहा करते हैं, 'मैं यह सोचता हूँ कि आसमान का रंग नीला है' या 'मैं सोचता हूँ कि एक और एक मिल कर दो होता है।' वस्तुत: सोचने वाला 'मैं' नहीं होता, मन होता है, जो नित्य-प्रति बदलता रहता है। एक दिन हमारा

मन कुछ सोचता है तो दूसरे दिन कुछ और। हम कैसे उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं?

हमलोगों में अपने मन और शरीर की क्रियाओं को देखने की क्षमता है। जिन चीजों को हम अलग वस्तु मानकर देख सकते हैं, वह कैसे हमारी असली पहचान हो सकती है? कोई ऐसी चीज अवश्य है जो हमारे शरीर और मन की सभी क्रियाओं को द्रष्टा और साक्षी की तरह देखा करती है। यह शरीर और मन हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान, क्रिया और विचारों का यंत्र मात्र है, उससे अधिक कुछ नहीं। हमारा वास्तविक परिचय, हमारी चेतना का केन्द्र आत्मा है। हम अपने जीवन में जो कुछ करते हैं, जो कुछ देखते हैं, आत्मा ही उन सबको उद्भासित करती है, सबकी साक्षी है तथा सभी को प्रकाशित करती है। यद्यपि यही हमारे व्यक्तित्व का केन्द्र है, हमारी सत्ता का बीज है, सार है, तथापि बहुत कम लोग इस तत्त्व को समझ पाते हैं अथवा उससे प्रेरित होकर व्यवहार करते हैं। यदि हम आत्मा को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझें तो हम शरीर और मन का समुचित सदुपयोग करने में समर्थ हो सकेंगे, सम्पूर्ण क्षमता के साथ हम उन्हें काम में ला सकेंगे। हम स्वस्थ रह सकेंगे, क्योंकि शरीर और मन के संचालन में हमारी भ्रान्तियाँ और हमारे दुराग्रह बाधक नहीं होंगे। इस दृष्टि से ध्यान एक स्वाभाविक-सहज क्रिया होगी।

आत्म-चेतना के केन्द्र से, वास्तविक 'मैं' के केन्द्र से जीवन संचालन किस प्रकार शुरू किया जाए? यही आध्यात्मिक पथ का मुख्य उद्देश्य है। यह एक लम्बा और कठिन मार्ग है, फिर भी इस पर अग्रसर होना अपने में एक सफलता है। आत्मा के साथ किंचित मात्र तादात्म्य स्थापित हो जाये और मन-शरीर के साथ उसी मात्रा में विलगाव हो जाये तो इससे ध्यानाभूति में बड़ा सहयोग मिलेगा। ध्यान अपने आप में एक शक्तिशाली साधन है जो हमें केन्द्रस्थ आत्मा तक पहुँचाने में सहायक होता है।

सर्वप्रथम आपको यह जान लेना है कि जीवन की सभी क्रियाएँ मात्र भूमिका निभाने के समान हैं। ये न तो हमारी सत्ता का प्रतिनिधित्व करती हैं, न हमारा सच्चा परिचय देती हैं। ये मात्र अभिव्यक्तियाँ हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि काम करना व्यर्थ है। इसका अर्थ है कि हमें कार्य करते जाना है, एक अभिनेता की तरह। अपने अभिनय तथा भूमिका का साक्षी बनना है। इस तरह अभ्यास करते हुए हम देखेंगे कि हमारी आत्मा द्रष्टा की तरह सब कुछ देख रही है और शरीर तथा मन अभिनेताओं की तरह अपने कर्त्तव्यों की भूमिका निभा रहे हैं।

दूसरी बात हमको यह समझ लेनी है कि 'मैं शरीर नहीं हूँ, इन्द्रियों की संवेदनाएँ नहीं हूँ, मन के भाव या संवेग नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ।' प्रारम्भ में इन सब चीजों को हमें बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करना होगा। अभ्यास से अपने इन सभी अभिव्यक्त पक्षों से तादात्म्य समाप्त होता जाएगा, तत्पश्चात् आप अपनी आत्मा के सत्य स्वरूप को समझ सकेंगे, जो परमात्मा का एक अंश है।

भक्ति की युक्ति

भगवान में विश्वास हो, इतना बहुत है। तुम्हें और किसी चीज के लिए प्रार्थना करने की कोई जरूरत नहीं। अपने सभी कामों के लिए उन पर निर्भर रहो। क्या विश्व का भरण-पोषण करने वाला अपने दासों की उपेक्षा करेगा? भई, तुम अपना कर्तव्य कर्म करो, शेष उस पर छोड़ दो।

जब तक तुम भगवान को खोजने में अपने मन को नहीं लगाते, जब तक उस बारे में नहीं सोचते, भगवान के पीछे नहीं जाते, उनकी खोज नहीं करते, तब तक तुम चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, चाहे अच्छे आदमी हो या बुरे आदमी, चाहे जवान हो या बूढ़े, कुछ भी हो, जीना बेकार है। जीवन में एक ही लक्ष्य, एक ही उद्देश्य होना चाहिए, 'भगवान से वार्तालाप', किसी भी रूप में। जरूरी नहीं कि सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनसे सम्पर्क किया जाय। नहीं, अर्थार्थी बनकर नहीं, अर्थरहित, विशुद्ध भक्ति के लिए। गीता में तो श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है-

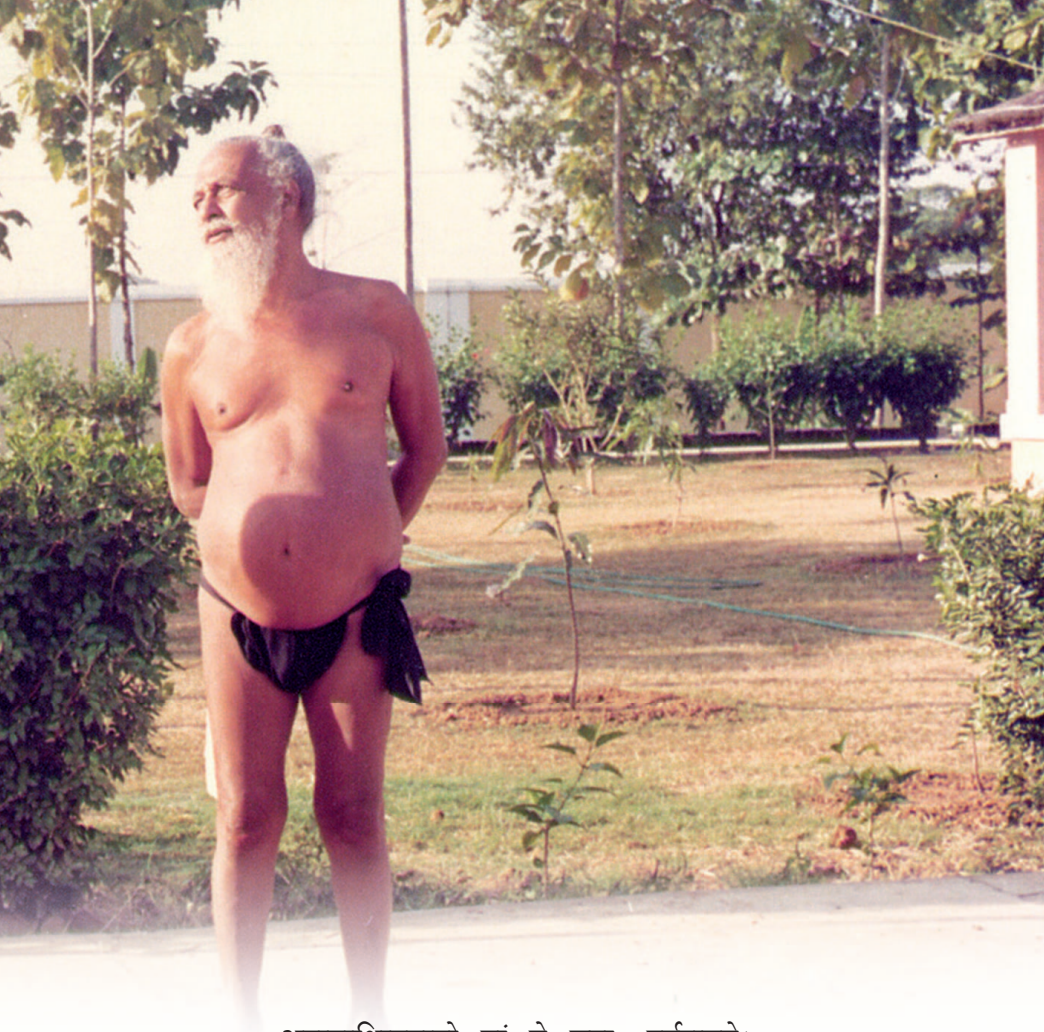

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥9.22॥

अर्थात् जो अनन्य भाव से मुझमें स्थित होकर मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से मुझे भजते हैं, ऐसे नित्य-युक्त व्यक्तियों का योग और क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

भक्ति क्या पैसा या सिद्धि पाने के लिए करोगे? भगवान कोई खजांची या जादूगर है? भगवान से एक सम्बन्ध होना चाहिए, और वह है विशुद्ध प्रेम का। यही प्रत्येक संन्यासी का प्रथम और अन्तिम कर्तव्य है, जिसके लिए उसने अपना परिवार त्यागा, अपने नाते-रिश्तेदार त्याग दिये, अपना घर, जमीन, जायदाद, सब त्याग दिया। यदि वह भगवान को भूल गया है तो उसकी केवल भगवान ही रक्षा कर सकते हैं। मैं तो कभी नहीं भूला, एक दिन के लिए भी नहीं।

बाँधाबाजार में सत्यम् चातुर्मास

दिनेश खरे, दुर्ग

छत्तीसगढ़ के राजनाँदगाँव से लगभग 40 किलोमीटर दूर डोंगरगाँव-चौकी मार्ग पर बाँधाबाजार में हिमालय जैसी प्राकृतिक छटाओं, नदी-नाले, तालाब और वन औषधि से लदे, हरे-भरे जंगलों की सुरम्य पहाड़ी पर विराजित हैं सिद्ध बालाजी हनुमान। हमारे पूज्य गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने वर्ष 1959 में बाँधाबाजार में चातुर्मास किया था। उन्होंने कठिन साधना कर अपनी शिष्या, माँ धर्मशक्ति को आशीर्वाद देकर अपने मिशन का कार्यवहन करने तथा आगे बढ़ाने हेतु उत्तराधिकारी शिष्य का आवाहन किया।

गाँव की मुख्य सड़क से लगभग 2 किलोमीटर के कच्चे रास्ते से तालाब पहुँचते ही ऊँची पहाड़ी पर मंदिर दिखाई देने लगता है, जहाँ पत्थरों की बनी सकरी सीढ़ियों

की चढ़ाई करने पर पहुँचा जा सकता है। पहाड़ी के ऊपर चौरस जगह में छोटा-सा मंदिर है जहाँ बालाजी के रूप में हनुमानजी विराजित हैं जिसके दर्शन मात्र से मन शांत हो जाता है। सूर्योदय एवं सूर्यास्त के साथ यहाँ से पूरे गाँव की हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। मंदिर से नीचे उतरते ही तालाब से लगे बगीचे में लगे ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से आच्छादित कुटिया दिखाई देती है जहाँ श्री स्वामीजी चातुर्मास के दौरान साधना-सत्संग करते थे। यह मंदिर लगभग 200 वर्षों से अधिक प्राचीन है, ऐसा पूर्वज बताते हैं।

गाँववाले इसे सिद्ध पीठ मानते हैं। उनके अनुसार श्री स्वामीजी के आगमन के पूर्व भी कई साधु-संत, ऋषि-मुनि यहाँ साधना कर चुके हैं। विगत कई वर्षों से हनुमानजी की आराधना कर रहे पुजारी-पण्डितजी काफी बुजुर्ग हो गये हैं, लेकिन वे रोज सबेरे-शाम सीढ़ियों को सहज रूप से चढ़ते हुए पूजा हेतु समय पर मंदिर पहुँच जाते हैं। उनकी दैनिक पूजा में उन्हें आनन्द आता है। यही कारण है वे हनुमानजी के साथ-साथ श्री स्वामीजी का गुणगान गाते थकते नहीं हैं। श्री स्वामीजी के भागवत, गीता, रामायण आदि पर प्रवचन सुनने पूरे गाँव के लोग जमा होते। श्रद्धा से उन्हें सुनते, कुछ प्रश्न भी करते। वे लोग आश्चर्य करते थे कि इन महात्मा को इतनी बातें कैसे मालूम हो गयीं। वे लोग उनको 'पिताजी' कहने लगे थे और दूसरे गाँव से अपने रिश्तेदारों व परिचितों को बुलाते, कहते कि

'महात्माजी आये हैं, उनको भगवान दर्शन देकर सब बताते हैं। सब कोई आकर दर्शन करो, उद्धार हो जायेगा।'

माँ धर्मशक्तिजी को दिव्य ज्योति दर्शन

इस पवित्र स्थल में विशेष साधना करते हुए श्री स्वामीजी ने मई माह में माँ धर्मशक्तिजी को आसन, प्राणायाम, ध्यान, जप-तप, भजन, कीर्तन तथा स्वाध्याय आदि सब कुछ सिखा दिया जिससे उन्हें आध्यात्मिक अनुभव हुए। पूज्य माँ धर्मशक्तिजी ने अपने इन दिव्य अनुभवों का उल्लेख सद्ग्रन्थ 'मेरे आराध्य' में किया है। उन्हीं के शब्दों में –

'गुरु पूर्णिमा की सुबह सत्यव्रतजी और धर्मशक्ति बाँधाबाजार गये। 9 बजे कुटिया पहुँचे। जरा देर बातें करते रहे। फिर पूजा करने की बात हुई। स्वामी सत्यम् ने कहा, चलो पीछे पहाड़ी पर, हनुमानजी का मंदिर है, वहीं बैठेंगे। ज्यादा ऊँचा तो नहीं, 40-50 सीढ़ियाँ होंगी, बड़े से पहाड़ के ऊपर मंदिर व सामने चौरस जगह है, बगल में जरा दूर तालाब भी है। ऊपर जाकर स्वामी सत्यम् मंदिर की सीढ़ी पर बैठ गये। हमलोगों ने पूजा की, स्वामी सत्यम् आँखें बन्द किये बैठे थे। हम दोनों भी सामने बैठकर, आँखें बन्द कर ध्यान करने लगे। धर्मशक्ति को विशेष अनुभव हुए, फिर लगा कि स्वामी सत्यम् से तेज रोशनी आकर धर्मशक्ति पर फैल गयी, गर्मी से पसीने-पसीने हो गई, हाथों से दोनों आँखों को ढक लिया, स्वामीजी हँस पड़े। स्वामीजी के हँसते ही दिव्य ज्योति गायब।'

चातुर्मास के दौरान सत्यव्रतजी अकेले हर शनिवार को फाइल वगैरह लेकर बाँधाबाजार पहुँचते, रविवार को रहते और सोमवार को सुबह राजनाँदगाँव घर वापस लौट आते। माँ धर्मशक्तिजी की कुशलक्षेम श्री स्वामीजी द्वारा पूछे जाने पर सत्यव्रतजी का जवाब होता, 'धर्मशक्ति आना तो चाहती है पर संकोचवश नहीं पहुँचती, किन्तु ऐसे समय में भी आसन पूरे करती व सभी काम करती है।'

अन्तर्यामी श्री स्वामीजी को माँ धर्मशक्तिजी की स्थिति समझ आ गई थी। उन्होंने निर्देश दिया कि 'धर्मशक्ति को अब सिर्फ पवनमुक्तासन और सुखपूर्वक प्राणायाम करना है, सुबह-शाम घूमना है, सत्-साहित्य पढ़ना है और कौशल्या के राम, यशोदा के कृष्ण के बारे में सोचना है।'

माँ गंगा और अपने गुरुदेव का आशीष प्राप्त कर श्री स्वामीजी ने प्रबल आत्मविश्वास से अपनी शिष्या को आशीर्वाद देकर, अपने मिशन का कार्य आगे बढ़ाने हेतु, शिष्य के आवाहन हेतु साधना पूर्ण की।

देवशक्ति और महान गुरु का आशीष फलीभूत हुआ, तथा 14 फरवरी 1960 की प्रभात बेला में प्रियदर्शी शिशु माँ धर्मशक्तिजी की गोद में आया। माँ धर्मशक्तिजी के द्वारा शिशु के नाम पूछे जाने पर श्री स्वामी सत्यानन्दजी ने 'निरंजन' नाम दिया और कहा तुम्हारा यह महामंत्र है –

मंत्र सत्यम्, पूजा सत्यम्, सत्यम् देवो निरंजनम्।
गुरोर्वाक्यम् सदा सत्यम्, सत्यमेवं परम पदम्॥

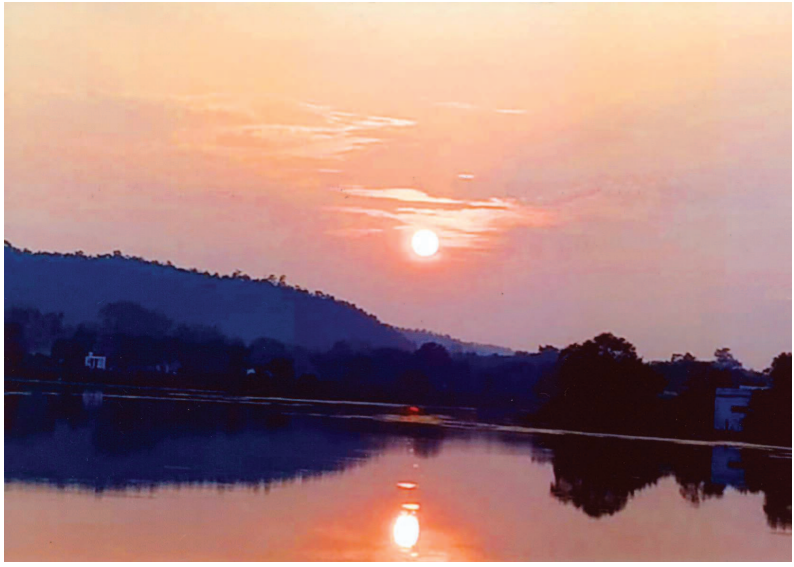

साधक का आह्वान

हे साधक!
चिर उज्ज्वल माना तेरा जीवन।
योग ध्यान से
माना कि तू धन्य हुआ है।
पर यह तो बतला
चिर पीड़ित जग में
तप्त धरा पर,
कितनों के गिरते भाग्य चक्र पर,
तूने अपना ध्यान दिया है।
अपने जप विधान से
कितनों के दु:ख को
गिन-गिन कर
भस्म किया है।

तो फिर उठ
हे साधक!
उठा अपनी साधना
युग-युग से जो भू-लुण्ठित है।
अन्ध गुफा से आ जा बाहर।
देख तो
जगत् कहाँ पर है खड़ा
और
तू अब तक रहा कहाँ?

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

मुक्ति के चार सोपान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 318, ISBN: 978-81-85787-92-3

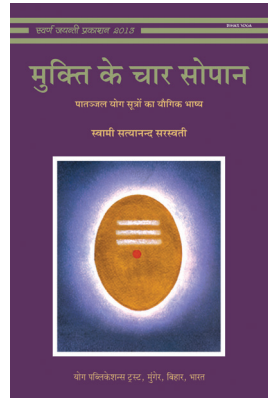

मुक्ति के चार सोपान में महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों के संस्कृत मूल पाठ के साथ उनके अनुवाद तथा विस्तृत व्याख्या का अद्भुत् समावेश है। व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण योग के इस सुविख्यात ग्रन्थ 'योग सूत्र' में जीवन को सही ढंग से जीने के सूत्र हैं। आधुनिक मानव इन सूत्रों के गूढ़ अर्थ को समझ पाये, इसके लिए स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने अभ्यास तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर सूत्रों एवं राजयोग की गहन, सारगर्भित व्याख्या की है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *www.satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org ऑनलाइन विश्वकोश है जहाँ बिहार योग पद्धति की शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक